शोकनाच

(कविताएँ)

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रानिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

हिन्दी अकादमी, दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

ewY; % 100#i;s

© vkj- psruØkafr

igyk laLdj.k % 2004

izdk'kd % jktdey izdk'ku izk- fy-
1-ch] usrkth lqHkk"k ekxZ
ubZ fnYYh-110 002

eqnzd % ch-ds- vkWQlsV
uohu 'kkgnjk] fnYYh-110 032

vkoj.k % bjQku

SHOKNACH
(Poems) by R. Chetankranti

ISBN : 81-267-0821-2

शोकनाच

आर. चेतनक्रांति

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

अनुक्रम

परिभाषित के दरबार में 11
औसत के राजमार्ग पर 14
वे तुम्हें मजबूर करेंगे 16
छटपटाकर जगह बदलना 18
श्रद्धावादी वक्त में 21
आगे के बारे में एक ईर्ष्याप्रसूत कविता 23

खुशी के अन्तहीन सागर में 26
खुदयक़ीनी 29
मालिक का छत्ता 31
बैंक में हम थे, हवा न थी 33
भगवान का भक्त 35
प्रयाण 36
एक बार फिर करुणामय 37

दस हजार की नौकरी और दाम्पत्य जीवन की एक सफल रात 39
सीलमपुर की लड़कियाँ 44
हिन्दू देश में यौन-क्रान्ति 47
हम क्रान्तिकारी नहीं थे 50
कि जैसे रिक्शेवाले ने प्रेम किया हो 55
भूखे बच्चों के सप्ताह में 58
पैसे के बारे में एक महत्त्वाकांक्षी कविता के लिए नोट्स 60
यहाँ आपकी छेनी गड़ी हुई है 64
लालबत्ती पर कविता वर्कशाप 67

एक दृश्य की समग्र और कलात्मक अभिव्यक्ति की समस्या 70
सत्यबोध के कर्मचारी, मालिक मकान के बच्चे और समय 75
आखिरी कामरेड 79

शोकनाच 83
हत्यारे साधु जाएँ... 86
संघे शक्ति 89
कविता के अँधेरे वक्तों की बानगी 91

हार्डवेयर की दुकान 93
गर्मियों की अगवानी 95
हिन्दी पार्क में एक प्रेमिल फटकार 98
कवि हे 101

कि जैसे वह शुरू से हो 104
उसकी हँसी 107
मर्द मजलिस 108
काश मैं होता 110

सुबह 112
मेरे दोस्त 114
प्रेम कविता 115
किसे सम्बोधित हो तुम ! 116
शाप 117
गली की बात 118
स्टिल लाइफ 120
वयस्-प्राप्ति 121
आसमान में ईश्वर 123
मैंने खोया धैर्य 124

तुष्ट-सम्पुष्ट छपास का शौकिया शोकगीत 125

माँ एवं पिताजी के लिए

शोकनाच

परिभाषित के दरबार में

सभी जाग्रत जीव
जिनकी रगों के घोड़े
माँद पर बँधे ध्यानरत खाते होंगे सन्तुलित-पुष्ट घास
विचार करेंगे
उन सभी पशुओं की नियति पर
जिनके खुर नहीं आते उनके वश में

वे ईश्वर को सलाह देंगे
कि ये बैल, ये भैंस, ये कुत्ता, ये बिल्ली
ये चूहा, ये हिरन, ये लोमड़ी
ये सब दरअसल जंगल के जानवर हैं
कि इनके विकास के लिए कोई विज्ञान रचा जाए

वे सब–
परिस्थितियाँ और मनस्थितियाँ होंगी जिनकी चेरी
जिन्होंने किए होंगे सारे कोर्स

और शानदार ढंग से पाई होगी शिक्षा
कि कैसे रखें काबू में कच्ची ऊर्जाओं को
कि कैसे निबटें ठाँठे मारती इस पशु ताकत से
जो हुक्म देती भी नहीं, हुक्म लेती भी नहीं
इसे उत्पादन में कैसे जोतें
वे सब एक दिन वहाँ बैठेंगे सिर जोड़कर
और ईश्वर को सलाह देंगे
कि थोड़ी छूट देकर देखें
कि विज्ञान यह भी कहता है
कि थोड़ी आज़ादी दो तो जानवर आसान हो जाता है

एक दिन
जब समाज में रहने की शर्त
सिर्फ हाजिरजवाबी कह दी जाएगी
अखबारों और टी.वी. के सारे नायक
बादलों की तरह घिर आएँगे
और चिड़ियाघर के सब जानवरों को
रेल की नंगी पटरी पर दौड़ाएँगे
और असहमतों, हिजड़ों, समलैंगिकों और बिलों में रहनेवाले कीड़ों को
खींच-खींचकर बाहर निकालेंगे
और आखिरी बयान माँगेंगे
कहेंगे कि चुप नहीं रहना
कितनी भी झूठी हो, मगर भाषा में कहना
ऐसी कोई बात जिससे होड़ निखरे
जान आए मैदान में
–अपनी सबसे प्रेरक ईर्ष्या के बारे में बताओ
–अपना सबसे हसीन चुटकुला सुनाओ

हवा में घुला हुआ गैंडा
एक दिन उतरेगा रेत पर
और वोटरलिस्ट से नाम काटता जाएगा
पागलों के, भिखारियों के, और पुलों के नीचे रहनेवाले असंख्यकों के

और जाकर बताएगा ईश्वर को
कि सरकारें चुनने का हक भी हो उसी को
जो बीचोंबीच रह सकता हो
न गुम हो जाता हो
अपनी ही नसों के जंगल में
न डूब जाता हो अपने ही खून के ज्वार में

एक दिन वे बैठेंगे वहाँ और दुनिया की सफाई पर विचार करेंगे।

औसत के राजमार्ग पर

सर्कस जैसा कुछ था
चमत्कार की चमकार में रंग-बिरंगा
'हय-हय-हैरानी' में नंगा
एक बौने के ऊपर
संरक्षणार्थ
या
हायरार्की के सुप्रसिद्ध कानून के हितार्थ
और, इसलिए भी कि ब्रह्मांड की सिकुड़ती नली में पृथ्वी सुरक्षित रहे
एक और बौना तैनात था

कहते थे उलझे-उलझे शब्दों में
कि राजा नहीं, प्रजा नहीं, भगवान नहीं, भक्त नहीं
कि फाज़िल नहीं, ज़ाहिल नहीं, आसान नहीं, सख़्त नहीं
सिर्फ मीडियोकर ही दुनिया को बचाएगा
कि कृष्ण का, कि राम का, कि ख्रीष्ट का
कि वेस्ट का और, कि ईस्ट का
मिला-जुला खुदा एक आएगा

वह होगा प्रतिभा-सम्पन्न अनुगामी
सत्ता-तक-जा-पहुँचों का अन्तर्यामी
उसे कोई नहीं रोक पाएगा
जब वह रास्ते के बीच के रास्ते के भी बीच के रास्ते से
ठस खड़ी किंकर्त्तव्य की भीड़ से
सुई की तरह निकल जाएगा
और मंच पर जाकर गाएगा

एक हजारवीं बार मीडियोक्रेसी का राष्ट्रीय गीत

और आत्मा में अवरुद्ध–ठूँस-ठूँसकर प्रबुद्ध
टुक-टुक असमंजस में धँसी भीड़
हल्की और मुक्त होकर तालियाँ बजाएगी
और पहले ही रेले के साथ सारी-की-सारी चली जाएगी
जहाँ होगा सबका साझा स्वर्ग
थोड़ा मीठा, थोड़ा नमकीन, थोड़ा कुरकुरा
मध्यम का।

वे तुम्हें मजबूर करेंगे

वे तुम्हें मजबूर करेंगे
कि तुम्हारा भी एक रूप हो निश्चित
कि तुम्हारा भी हो एक दावा
कि हो तुम्हारा भी एक वादा

कि तुम्हारा भी एक स्टैण्ड हो
कि तुम्हारी भी हो कोई 'से'

वे तुम्हें मजबूर करेंगे
कि रुको
और, कि या तो हाँ कहो या ना
कि चुप मत रहो
कि कुछ भी बोलो–अगर झूठ है तो वही सही

वे तुम्हें मजबूर करेंगे
कभी गालियों से
कभी प्यार से
कभी गुस्से से
कभी मार से
कभी ठंडी उदासीनता से तुम्हें तुम्हारे कोने में अकेला छोड़
दीवार पीछे खड़े हो इन्तजार करेंगे
वे तुम्हें अपने धैर्य से मजबूर करेंगे

वे तुम्हें मजबूर करेंगे
कभी कहेंगे कि तुम फालतू हो,

कि ऐसा है तो तुम्हें मर जाना चाहिए
वे तुम्हें अपने ठोस फैसलों से मजबूर करेंगे
वे तुम्हारे सामने एक शीशा रख देंगे
और कहेंगे कि इससे डरो जो तुम्हें इसमें दिख रहा है

वे तुम्हें मजबूर करेंगे अपनी कल्पना से
और कल्पना की प्लानिंग से
वे कहेंगे कि तुम ईश्वर हो
बल्कि उससे भी ज्यादा ताकतवर
आओ और हम पर राज करो

वे तुम्हें मजबूर करेंगे अपने समर्पण से।

छटपटाकर जगह बदलना

मैंने जब साधुता से कहा–विदा
और घूमकर दुर्जनता की बाँह गही
वह कोई आम-सा दिन था
खूब सारी खूबियों की खूब सारी गलियों में
आवाजाही तेज थी
मन्दिर के चबूतरे पर
एक चिन्तित आदमी
सिर झुकाए, आँखें मूँदे
भूखों को भोजन बाँट रहा था
वह इतना डर गया था
कि भूखे के हाथ काँपते तो पत्तल मुँह पै दे मारता

बैठे-बैठे
एक लम्बा अरसा बीत गया था
मेरे गुस्से की नोकें एक-एक कर डूबती जा रही थीं
असहमत होने की इच्छा पिलपिली हो गई थी
दिल जरा-जरा-सी बात पर उछल पड़ता था
और खुदयकीनी पिघले गुड़ की तरह नसों में भर गई थी

चलते-चलते भीतर कुछ कौंधता था
और खो जाता था
क्क तकीपाबन्दी
बुजुर्गों का सम्मान/सफेद चीजों का दबदबा
दफ्तर की ईमानदारी
एक अच्छे देश का नागरिक होने की जिम्मेदारी

और दोहरे-तिहरे अर्थोंवाली अर्थगर्भा कविताएँ
पिचकारी में पानी की तरह
हर जगह मेरे भीतर भर गई थीं
कोई जरा-सा कहीं दबाता
तो अच्छाई अच्छों की पीक की तरह
या प्राणप्यारी कुंठा के फोड़े की मवाद की तरह
फक् से फुदक पड़ती

लोग मुझसे खुश थे
और अपना स्नेहभाजन बनाने को देखते ही टूट पड़ते
पालतुओं को पालने का शौक आम था
जंगलियों के लिए चिड़ियाघर थे
बस एक वीरप्पन था जो जंगल में बना हुआ था

तभी बस शरारतन,
और थोड़ा ऊब की प्रेरणा से
और इसलिए भी डरकर, कि कहीं भगवान ही न हो जाऊँ
मैंने
भलमनसाहत की दमघोंटू अगरबत्तियों से
गोश्त की भूरी झालरों में सजी बैठी मनुष्यता से
सफेद फालतू मांस से लदे अमीर बच्चे की आतंकवादी सुन्दरता से
छुटकारा पाना शुरू किया
पवित्रता के बौने दरवाजों की मर्यादा से निर्भय हो
मैं धड़धड़ाकर चला
जैसे सुन्दर कारों के बीच ट्रक जाता है
और कम्युनिटी सेंटर से बाहर हो गया, जहाँ
'बिगब्रांड' कूल्हों और
अच्छाई के भरोसे दुर्भाग्य से लापरवाह
चेहरों की सभा थी
और दरवाजे में वह मरघिल्ला चौकीदार
ईमान-की-हवा-में-तराश-दी-गई-मूर्ति-सा
अपने तबके के अहिंस्र बेईमानों की जामातलाशी कर रहा था

नोटिसबोर्ड पर लिखा था
कि देवताओं की पहरेदारी नहीं करता जो
वो हर कमजोर चोर होता है

सड़क पर मैंने
बदबूदार खुली-आम हवा में
लम्बी साँस भरी और देखा
धर्मग्रन्थों और कानून की किताबों की पोशाकें पहने
अच्छाई के पहरेदारों का जुलूस चला जाता था

बीचोंबीच अच्छाई थी
लम्बा बुर्का पहने
ताकत को कमजोर बुरे लोगों की नजरों से बचाती
सिंहासन की ओर बढ़ी जाती
फट्-फट् फूटते गुब्बारों
और पटाखों के अच्छे, अलंघ्य शोर में सुरक्षित
स्वच्छ शामियानों से गुजरती
चाँदनियों पर जमा-जमाकर पैर धरती
शक्ति के साथ
आमन्त्रित करती

लेकिन मैं बाफैसला
कोढ़िन कमजोरी के जर्जर आँचल में हटता हुआ पीछे
लड़ता मन में अच्छाई के ज्वार से
ताकत के भड़कते बुखार से
करता ही गया विदा उन्हें एक-एक कर
जो जाते थे
अच्छेपन की रौशन दुनिया में
अच्छाई के राजदण्ड से शासन करने।

श्रद्धावादी वक्त में

श्रद्धा का सूर्य शिखर पर था
सबसे ठंडे मौसम में भी जो गर्माती रहती थी भीतर ही भीतर
चपल चापलूसी की चलायमान चाँदई गुफा में दहकती थी जो सतत,
ठंडी अपराजेय वह आग
अपनी नीली लपटों से झुलसाती सृष्टि को

कि पिघल बह गया शरीर
शरीर के डबरे में भर गया
बची बस एक आँख तैरती
पूछती
बोल-बोलकर–
कि श्रद्धा से लबालब इस महागार में है कोई सीट खाली
बैठकर हिलने के लिए
दमकते वक्तृत्व की ताल पर
झमाझम व्यक्तित्व की चाल पर !

कि हम अपने पहलों से थोड़े छोटे
हम चाहते हैं कि
पहले से छोटी हमारी आज की दुनिया में
हमें हमारी जगह मिले

कि कल हम भी
आज के मंच से छोटे
एक मंच के मालिक होंगे
श्रद्धा उपजाने की मशीन से
कातेंगे वहाँ बैठ अपनी नाप से छोटे कपड़े

अपने बादवालों के लिए

जितनी मेहनत हमने की
उससे कम मेहनत करने की सुविधा देंगे
अपने अनुजों को
सिखाएँगे उन्हें इससे भी घोर अनुकरण
और मनीषा जिसके जेबी संस्करण
श्रद्धेय ने हमें दिए
उन्हें हम आनेवाले उन जिज्ञासुओं की
उँगलियों पर बटन बनाकर धर देंगे
कि वे जब चाहें
पा लें अपने पापों के तर्क

सो, हे मानवी मेधा के साकार पुरुष
अपने असंख्य खम्भों वाले इस छोटे से दालान में
हमें बताइए, कि अपनी इन योजनाओं के साथ हम कहाँ बैठें !

हमें अभिनय करना पड़ता है परवाह का
बीच बाजार, जब हम पकड़े जाते हैं,
अपने अगलों को हम देंगे खूब सारा अँधेरा
कि सुस्थ, बाइत्मीनान बैठ वे सोच सकें
सबसे बकवास किसी मसले पर,
मसलन मसला मालिक के मूड का
फसलन फसला फालिक के फूड का
हमसे भी ज्यादा सुलभ तुक उन्हें मिले
हर जंग वे जीतें और अंग भी न हिले

आपने हमें दी सूक्तियाँ
हम उन्हें दें कूक्तियाँ।

आगे के बारे में एक ईर्ष्याप्रसूत कविता

वे तो बढ़े ही चले जा रहे थे
आगे, और आगे

और आगे के बारे में उनकी राय तय हो चुकी थी
कि जहाँ पीछेवालों की इच्छाएँ जाकर पसर जाएँ
कि जहाँ आप दयनीयता पर क्रोध करने को स्वतन्त्र हों
कि जहाँ जमाने-भर की ईर्ष्याएँ
आपका रास्ता बुहारें
उस जगह को आगे कहते हैं

वे आगे वहाँ
दुनिया-भर की ईर्ष्या पर मुटिया रहे थे
और बीच-बीच में फोन करके पूछते थे,
हैलो, अरे तुम कहाँ ठहरे हुए हो ?

रास्ता उन्हें अध्यात्म की तरह लगता था
जैसे किसी को धर्म का डर लग जाता है
कि लीक छोड़कर
चाय की दूकान तक भी जाते
तो 'चलूँ-चलूँ' से छका मारते

एक किसी भी दिन
वे उतरते नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर
और शहर के सबसे स्मार्ट रिक्शावाले को
रास्ता बताते हुए शहर पार करने लगते

कि जैसे बरसों से इसे जानते हों

वे अपने भीतर और शहर में
एक खाली कुआँ तलाश करते
जो उन्हें मिल जाता

वे एक मकसद का आविष्कार करते
जो पिछले एक करोड़ साल से इस दुनिया में नहीं था
वे किराए के पहले कमरे की कुँआरी दीवार की तरह
मुँह करके खड़े होते, और कहते–
कि जो जा चुके हैं आगे, उन्हें मेरा सलाम भेजो
कि मैं आ गया हूँ
कि यह लकीर जिसे तुम रास्ता कहती हो
अब बढ़ती ही जाएगी, बढ़ती ही जाएगी मेरे पैरों के लिए
कि मैं रुकने के लिए नहीं हूँ
चलो, नीविबन्ध खोलो, झुको और खिड़की बन जाओ

और ऊँचाइयों पर खुदाई शुरू कर देते
कि कुँओं को पाटना तो पहला काम था
कुएँ जो लालसा के थे

यूँ एक करोड़ साल बाद
राजधानी दिल्ली में एक और सृष्टि का निर्माण शुरू होता

एक बौना आदमी
आसमान के इस कोने से उस कोने तक तार बाँध देता
कि यहाँ मेरे कपड़े सूखेंगे
भीड़ के मस्तक को खोखला कर एक अहाता निकाल देता
कि यहाँ मेरा स्कूटर, मेरी कार खड़े होंगे
दुनिया के सारे आदमियों को
एक-के-ऊपर-एक चिपकाकर अन्तरिक्ष तक पहुँचा देता
कि इस सीढ़ी से कभी-कभी मैं इन्द्रलोक
जाया करूँगा–जस्ट फॉर ए चेंज

और इन्द्रलोक पहुँचकर अकसर वह फोन करता,
पूछता, हैलो, अरे तुम कहाँ अटक गए ?

इस तरह इन छवियों से छन-छनकर
जो आगे आता था
वह लगभग-लगभग दिव्य था
लगभग-लगभग एक तिलिस्म
कि हर गली के हर मोड़ से उसके लिए रास्ता जाता था
लेकिन सबके लिए नहीं
कि वह दुकानों-दुकानों बिकता था पुड़िया में
पर सबके लिए नहीं

कि वह कभी-कभी सन्तई हाँक लगाता था
खड़ा हो बीच बजार
लेकिन वह भी सबके लिए नहीं

रहस्य यही था
कि वह सबका था
लेकिन सबके लिए नहीं था
ऐसे उस आगे की आँत में उतरे जाते थे कुछ–
अंग्रेजी दवाई-से–तेज़ और रंगीन
और कुछ अटक गए थे, ठीक मुहाने पर आकर कब्ज की तरह
और सुनते थे कभी-कभी
पब्लिक बूथ पर हवा में लटके
चोंगे से रिसती हुई एक हँसती-सी आवाज़
कि, हैलोऽऽ, अरे तुम कहाँ फँसे हो जानी !

खुशी के अन्तहीन सागर में

खुशी खत्म ही नहीं होती

कुछ ऐसी मस्ती छाई है
कि रात-भर नींद नहीं आई है
फिर भी सुबह चकाचक है

ह्रितिक रौशन प्यारा-प्यारा
मुन्नी की आँखों का तारा

सेवानिवृत्त दद्दू कर्नल जगदीश
बाल्कनी में जागिंग करते-करते हुलसे–
नायकहीन अँधेरे वक्तों का उजियारा

आमलेट के मोटे पर्दे के पीछे से
बैंक मनीजर कुक्कू ने मुस्कान उठाई–
वह देवता है खुशियों का

सुन्दर सुबहों को जगानेवाला परीजाद

देखो, मछलियाँ उसकी देह की क्या कहती हैं–
लिपिस्टिक बहू
बाथरूम के दरवाजे पर विजयपताका-सी लहराई

पर्दे के इस कोने से उस कोने तक दरिया-सी बहती हैं–
मम्मू बोलीं

साठ साल की उजले दाँतोंवाली मम्मू
नए दौर का नया ककहरा सीख रही हैं–
क ख ग घ च छ ट ठ, मेरी घटती उम्र का घटना
उसके ही शुभ-शिशु-आनन के दरशन का परताप
मुझे यह मेरे खेल-खिलौने दिन वापस देता है

इसके वह कई करोड़ लेता है–
ज्ञानी मुन्ना बाबा ने खुशियों-भरी सभा में अपनी पोथी खोली

'स्टारडस्ट के पण्डित', चुप कर–दद्दू कड़के
कीमत का मत जिक्र चला, ओ निर्धन माथे
कीमत का जिक्र अशुभ होता है
तुझसे कभी किसी ने
किसी चीज की कीमत पूछी, बोल
कीमत तो है शगुन
असल चीज है खुशी

खुशी जो खत्म न हो–
डाक्यूमेंट्री फिल्मों के निर्माता
निशाचर
पापा
घर के मुखिया
खुशियों के कालीन पै पग धरते ही चहके
खुशी ही रचे उन्हें
जो करते लीड जमाने को

पिछले हफ्ते नहीं सुने थे वचन
गुरु खुशदीप कमल सिंहानीजी के ?
खुशी ने ही तो उसे रचा है
उस मुस्काते, उस उम्र घटानेवाले जादूगर नायक को

और हमें भी तो
रचा खुशी ने ही–
बेडरूम से पर्दा फाड़
भैया बड़े कृष्ण भक्त
पोप्पर्टी डीलर, बोले–
खुशी की गागर धरो सहेज
शेष कृष्णा पर छोड़ो
आँखें मूँदो–अन्तर के संगीत में नाचो
खुशी के अन्तहीन सागर के तल पर
हृदय से झरते जल पर डोलो
(धूम धाम धाम धूम धमक धमक धन्न)
कृष्ण हरे बोलो।

खुदयक़ीनी

खुदयक़ीनी भी एक चीज़ थी
जैसे कोट और कमीज़
बदन पर डालकर निकलते तो खुद-ब-खुद बाक़ियों से अलग हो जाते
पैसों की तरह हम उसे कमाया करते
सहेजकर रखते
सन्तानों के लिए

वह मोटे तले का जूता थी
पुरानी घोड़े की नाल पर कसा हुआ
सब आवाज़ों के ऊपर जो ठहाक्-ठहाक् बजता
मिमियाती हुई जातियों और पीढ़ियों
और देश के सुदूर कोनों से ढेर-ढेर संशय लिये आती भीड़ के मुँह पर पड़ता

दुनिया के मुँह पर दरवाजा बन्द कर
हम उसका रियाज़ करते
शब्द बदलते, वाक्यों के तवाज़ुन में हेर-फेर करते
साँस में फूँकार भरते
पिंडलियों में इस्पात ढालते
विशेषज्ञों से सलाह लेते
और तब युद्ध पर निकलते
और जीतकर लौटते

हारने की दशा में भी हम न हारते
हम सोचते कि हम जीत रहे हैं
और हम जीत जाते

खुदयक़ीनी हमारी
पोले ढोल के ऊपर चमड़े का शानदार खोल थी
जब भी खतरा दिखाई देता,
हम उसे बेतहाशा पीट डालते
और सारे समीकरण बदल जाते।

मालिक का छत्ता

आसमान काला पड़ रहा था
धरती नीली
जब हमारे मालिक ने
अपने मासिक दौरे पर पहला क़दम दफ़्तर में रखा

दफ़्तर में बहुत सारी कोटरें थीं
शुरू में आदमी भरती किए गए थे

मालिक गुजरा तो
हर कोटर कसमसायी, थोड़ी-सी तड़की
जैसे आकाश में बिजली कौंधी हो
और उनकी उपस्थिति को महसूस किया गया

दूर से देखो तो समाज मधुमक्खियों के छत्ते की तरह दिखाई देता है
बन्द और ठोस
लेकिन उसमें रास्ते होते हैं, बहुत सारे छेद

मालिक उन सबसे गुजरकर यहाँ तक पहुँचा है
उसके बदन से शहद टपक रहा है
सब उसके पीछे हैं
बस, एक चटखारा

हम समर्थ थे
और सुलझे हुए
और नए फैशन के कपड़ों से सजे
लेकिन उस क्षण हमारे ऊपर

हमारा वश नहीं रह गया था
हम किसी भी पल सो सकते थे
हम किसी भी पल रो सकते थे

वे कुछ कह देते तो
हम तालियाँ बजाकर स्वागत करते
लेकिन वे कुछ नहीं बोले
और चले गए।

बैंक में हम थे, हवा न थी

बैंक में हम थे, हवा न थी
हम साँसों की बची बासी हवा में साँसें लेकर
अर्थव्यवस्था में जिन्दा थे

जिन्दा थे इस ख्याल से भी कि हम बैंक में हैं
और इससे भी कि देखो तो कितने होंगे जो बैंक में नहीं होते
हम विकासलीला की हत्शीला भूमि के बैंक में थे

बैंक में हवा न थी, पैसे थे
जैसे जंगल में हवा दिखती नहीं
पर जिन्दा रखती है
ऐसे ही बैंक में पैसे
दिखते नहीं, पर जिन्दा रखते हैं

लेकिन हवा अपने जीवितों को गुस्सा नहीं देती
पैसे अपने जीवितों को गुस्सा देते हैं

बैंक में हवा न थी, गुस्सा था
जिनकी पासबुक में पैसे ज्यादा थे
उनका गुस्सा था
जिनकी पासबुक में कम थे
उनके ऊपर गुस्सा था
उनके ऊपर बैंक के कम्प्यूटरों का भी गुस्सा था
वे ढों की आवाज के साथ चिड़चिड़ाकर हँसते थे

बैंक में हवा न थी, कम्प्यूटर थे
और हर कम्प्यूटर के साथ
कॉर्बन कॉपी की तरह नत्थी एक क्लर्क था
जिनकी पासबुक भारी थी
उन्हें देख वह भी रिरियाता था
जिनकी हल्की थी, उन्हें गरियाता था

बैंक में हवा न थी, समाज था
समाज अपनी आदतों में कतई सहनशील न था
वह हिकारत से देखता था
और देख लिये जाने पर पूँछ दबाकर कुँकुआता था
वह घर से योजना बनाकर अगर चलता था
तो ही विनम्र हो पाता था
अन्यथा इनसानियत के कैसे भी कुदृश्य पर
सुतून-सा खड़ा रह जाता था

बैंक में हवा न थी, सुतून थे
कदम-कदम पर तने खड़े
कि जैसे गिलट के सिक्के चिन दिए गए हों

एक खिड़की थी
जिसके पीछे हवा जोर मार रही थी
और आगे दो खातेदार हिजड़े
खड़े हवा के लिए लहरा-बल खा रहे थे

बैंक में हवा न थी
पौरुष से अकड़े सैकड़ों सुतून
और नपुंसकता के खाते पर पानी-पानी होते
दो हिजड़े थे,
जब मैं पहुँचा,
वे भी जा रहे थे।

भगवान का भक्त

कृतज्ञ होकर मैंने ईश्वर से डरने का फैसला किया

जब बिल्ली अँगड़ाई लेकर चलती
जब तीसरी आँख का कैमरा क्लिक करता
और अनिष्ट का देवता क्लोजअप में मुस्कुराता

जब दूर कहीं से कोई डरावनी आवाजें भेजता
जब किताबों में लिखे काले मुँहवाले शब्द
छिपकलियों और तिलचट्टों की तरह पीले पन्नों से निकलते
और सरसराकर नीली दीवारों पर फैल जाते
मैं ईश्वर का आभार व्यक्त करता कि मुझे कुछ नहीं हुआ

संसार वीरता में मस्त था
कण-कण में युद्ध था
पाए जा चुके मकसद और हासिल किए जा चुके किले थे
जो कहते थे कि रुको मत

मैं कृतज्ञता का मोटा कम्बल ओढ़े
कदम-कदम खड़े
भिखारियों को चेतावनी की तरह सुनता
हर मन्दिर को शीश नवाता
प्रणाम करता हर सफेद चीज को
कहता हुआ कि कृपा है, आपकी कृपा है
गर्दन झुकाए चला जाता
सबसे घातक भीड़ के भी बीच से
मुस्कुराता हुआ
बुदबुदाता हुआ–दूर हटो दूर हटो दूर हटो कीड़ों !

प्रयाण

चलो प्रिये, दिखावा करें
कि दुश्मन
अपने दिल की आग में जल मरें

सारे कपड़े पहन लो
सारी पैंटें सारी शर्टें, सारी जूतियाँ सारी टोपियाँ
घर का सब सामान बीनकर
सिर पर धर लो
झाड़ो घर का कोना-कोना
इक-इक कण सोने का
चाँदी का झोली में भर लो
नयी झाड़ू भी जिसमें चीते की पूँछ के बाल लगे हैं

सबसे ऊपर रखो हार्दिक शुभकामनाएँ
दिल की शक्ल में कटी लाल कागज की झंडी

रुको, जरा फोन कर लेते हैं

सुनिए, हम लोग यहाँ अष्टभुजा चौराहे पर खड़े
सेल से फोन कर रहे हैं
हम आपके यहाँ दिखावा करने आ रहे थे
आपकी तैयारी हो गई है न

जी हाँ, जी हाँ बस ऐसे ही सोचा
कि चलो पहले सावधान कर दें !

एक बार फिर करुणामय

मैंने सारा खतरा अपनी तरफ रखा
और शहर के बीचोबीच खड़े होकर पूछा
कि अगर आप चाहें तो बता दें कि सच क्या है

लोग मेरे भोलेपन पर चकित हुए
और हँसे
और कुर्सियों पर पीठ टिकाकर शान्त हो गए

क्योंकि मेरे पास सच को जानने का कोई तरीका नहीं था
और क्योंकि उन्हें झूठ से अनेक फायदे थे

इसलिए
उन्होंने बिल्कुल सच की तरह सहज होकर कहा
कि सच तो यही है जो तुम देख रहे हो

मैंने सुना
और अपनी हताशा को
जाहिर न होने देने के लिए देर तक मशक्कत की

कि अगर वे सुकून में चले गए थे
तो उन्हें अपने सन्देह का सुराग देना हिंसा थी
वह उन्हें उत्तेजना और पीड़ा में ले जाती

मैंने खतरे को सहेजकर भीतर रखा
प्रलय के अगम कूप को

अपने गोश्त से ढाँपा

और ईश्वर से कहा कि चिन्ता मत करो

और सबकी तरफ देखकर मुस्कुराया एक अहमक हँसी
कि वे आश्वस्त रहें
कि डरें नहीं कि उनका झूठ बेपर्दा था
कि कोई उन्हें आकर सजा देगा
उनके झूठ का रास्ता रोकेगा

और ईश्वर से कहा कान में
कि चलो अभी स्थगित करते हैं
कि उन्हें अपनी चालाकी
और चतुराई
और कानाफूसी
और वीरता की तरह बरतनेवाली
कायरता से और सफेदी
और सफाई से
बाहर आते हुए अपनी सीढ़ियाँ उतरने दो
कुछ वक्त उन्हें और दो।

दस हज़ार की नौकरी और दाम्पत्य जीवन की एक सफल रात

अक्सर यह गुम रहती है
पीली, गुलाबी, हरी, नीली या जाने किस रंग की एक लट की तरह
उस धूसर सफेद में
जो सात रंगों के मन्थन में सबसे अन्त में निकलता है...
और
सबसे अन्त तक रहता है...

आप अगर ढूँढ़ने निकलें तो इसे नहीं पा सकते

लेकिन कभी-कभी अकस्मात् यह घटित हो जाती है
जाहिर है पूर्वजन्मों के सद्कर्मों और वर्तमान में अर्जित
वस्तुगत आत्मविश्वास की इसमें बड़ी भूमिका होती है

यह कहानी ऐसी ही एक गुमशुदा रात की है

जो शाम छः बजे शुरू हुई, और कुम्हार के चक्के की तरह सुबह छः बजे
तक धुआँधार चली

बेशक जो आपके सामने आएँगे, वे चित्र उस रफ़ तार का पता नहीं देते
जो अक्सर ठोस और धारदार चित्रों के पीछे अकेली सिर धुनती रहती है

1

आप देख रहे हैं
यह एक पत्नी है
सवेरेवाली गाड़ी जिससे छूट गई थी
पूरा दिन इसने अभारतीय काम-कल्पनाओं
और बच्चे के सहारे काटा

अब सूरज डूब रहा है
सुबह जिनको जाते देखा था
अब वे आते दिख रहे हैं
खुशी-खुशी धक्का-मुक्की करते हुए
वे अपनी जमीनों और गलियों में उतर रहे हैं

देखिए पति भी आ रहा है
उसकी कुहनी खंजर है और पीठ ढाल
लेकिन यह तो रोज ही होता है
आज उसके हाथ में एक तरबूज भी है
गर्मियों का फल जो शीतलता देता है
लेकिन सिर्फ यही नहीं
निःसन्देह आज उसके पास कुछ और भी है
देखिए
पत्नी के प्रेमियों से
आज वह जरा भी घबराया नहीं
सारे उसकी बगल से बिना सिर उठाए गुजर गए
वह भी, वह भी...और वह भी जिसके बिना मुन्ना एक पल नहीं ठहरता

2

रात बरसों की सोई भावनाओं की तरह जाग रही है
और नींद में छेड़े साँप की तरह
कुंडली कस रही है...
पत्नी जैसा कि आप देख ही चुके हैं
अभी खूँटा तुड़ाने पर आमादा थी,
धीरे-धीरे लौट रही है...
उसके भीतर उस मुर्गे के पंख एक-एक उतरकर
तह जमा रहे हैं जो रोज पिछले रोज से एक फुट ज़्यादा उड़ता है
और हवा में मारा जाता है,
अगले दिन फिर उड़ता है और फिर मारा जाता है,

संकुचित, सलज्ज और बिद्ध...मादा 'बाकी कल' के लिए सुरक्षित हो
अभी अपने प्रकृति-प्रदत्त नर के लिए तैयार हो रही है...

देखो
पति आज टहल नहीं रहा
बैठा घूरता है
उसकी नंगी जाँघों पर तरबूज और हाथ में चाकू है
आँखों में आमन्त्रण
जिसे आज कोई नहीं ठुकरा सकता
इस आमन्त्रण के बारे में सुनते हैं कि
जिनके पूर्वजों ने एक हजार साल सतत् त्राटक किया हो...
यह उन्हीं की आँखों में होता है

पत्नी आखिरी सीढ़ी पर आ चुकी है
बैठती है
वह कंघी से अपने पाप बुहार रही है,
जिनको उसने
दिन-भर सोच-सोचकर अर्जित किया था
पूर्णिमा का चाँद ठीक ऊपर चक्के की तरह घूम रहा है

घूँ...घूँ...घूँ...
पति को छुटपन से चाँद का शौक रहा है
घूमता चाँद उसकी आदिम इच्छाओं को जगाया करता है

3

स्त्री के भीतर चाँदनी का ज्वार उठ रहा है
स्वच्छ, धवल, शुभ्र पातिव्रत का कीटाणुनाशक फेन
उसकी देह के किनारों से
फकफकाकर उड़ रहा है, जैसे हांडी से दाल
पुरुष चीखता है और चाँद को देखकर
कहता है...शुक्रिया दिल्ली !
कहीं कुछ गरज रहा है
मगर यहाँ शान्ति है
बहुत तेज लहरें हैं और
शीशे की भारी पेंदेवाली नाव धीरे-धीरे डोल रही है

हवा के खसखसी पर्दे में एक कहानी बूँद-बूँद उतर रही है।
यह विजयगाथा है पुरुष की
पिघले मोम की तरह वह
ठहर-ठहरकर उतर रही है
और
स्त्री मोटे कपड़े की तरह उसे सोख रही है
...और वेतन दस हजार
मंजू मुझे यकीन था, यकीन है और यकीन रहेगा
तुम ऐसे नहीं जा सकतीं
एक फ्रिज और एक कूलर का अभाव
और दिल्ली,
हमारे प्यार को नहीं खा सकते
जब तक मैं हूँ
हूँ...हूँ...हूँ...हूँ
चील की तरह आकाश में पहुँची
और बगुले की तरह हौले-हौले उतरी स्त्री के ऊपर यह हुंकार

बिल्ली का नवजात बच्चा
जैसे अपने नंगे, गुलाबी गोश्त से साँस लेता है
वैसे ही पत्नी
रोमछिद्रों से इसे ग्रहण करती है
'नाक, कान और आँख
ये कितनी पुरानी चीजें हैं जीवन के मुकाबले'—वह कहती है
और खुल जाती है
'सफल पति का प्यार'
तारें भरे आसमान में मस्ती से टहलते हुए वह
अपने आपसे कहती है
'सचमुच इस कालातीत अनुभव के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं, मित्रो'

4

पूरब में पौ फट रही है और
दिलों में दो-दो नयी, हरी पत्तियाँ सशंक उठ खड़ी हुई हैं
पुरुष सूरज के लाल गोले को जाँघों पर रखता है
और उसमें से एक चौकोर टुकड़ा काटकर
पत्नी को देता है
...चखो, अब यह हमारा है
यह सब कुछ हमारा है
स्त्री का क्षण-क्षण आकार बदलता मांस
पति की देह में नए सिरे से जड़ें ढूँढ़ता है

तरबूज के गूदे से लथपथ दो नंगे बदन
गली के ऊपर मुँडेर पर आते हैं
उजली हवा में थरथराते हैं
भयभीत जनसाधारण की पुतलियों में सरसराते हैं
और एक-दूसरे को हँसी देते हुए कहते हैं
अब यह सभी कुछ हमारा है

सीलमपुर की लड़कियाँ

सीलमपुर की लड़कियाँ 'विटी' हो गईं

लेकिन इससे पहले वे बूढ़ी हुई थीं
जन्म से लेकर पन्द्रह साल की उम्र तक
उन्होंने सारा परिश्रम बूढ़ा होने के लिए किया,
पन्द्रह साला बुढ़ापा
जिसके सामने साठ साला बुढ़ापे की वासना
विनम्र होकर झुक जाती थी
और जुग-जुग जियो का जाप करने लगती थी

यह डॉक्टर मनमोहन सिंह और एम. टी.वी. के उदय से पहले की बात है।

तब इन लड़कियों के लिए न देश-देश था, न काल-काल
ये दोनों
दो कूल्हे थे
दो गाल
और दो छातियाँ

बदन और वक्त की हर हरकत यहाँ आकर
मांस के एक लोथड़े में बदल जाती थी
और बन्दर के बच्चे की तरह
एक तरफ़ लटक जाती थी

यह तब की बात है जब हौज़ख़ास से दिलशाद गार्डन जानेवाली
बस का कंटक्टर
सीलमपुर में आकर रेजगारी गिनने लगता था

फिर वक्त ने करवट बदली
सुष्मिता सेन मिस यूनीवर्स बनीं
और ऐश्वर्या राय मिस वर्ल्ड
और अंजलि कपूर जो पेशे से वकील थीं
किसी पत्रिका में अपने अर्द्धनग्न चित्र छपने को दे आयीं
और सीलमपुर, शाहदरे की बेटियों के
गालों, कूल्हों और छातियों पर लटके मांस के लोथड़े
सप्राण हो उठे
वे कबूतरों की तरह फड़फड़ाने लगे

पन्द्रह साला इन लड़कियों की हज़ार साला पोपली आत्माएँ
अनजाने कम्पनों, अनजानी आवाज़ों और अनजानी तस्वीरों से भर उठीं
और मेरी ये बेडौल पीठवाली बहनें
बुजुर्ग वासना की विनम्रता से
घर की दीवारों से
और गलियों-चौबारों से
एक साथ तटस्थ हो गईं

जहाँ उनसे मुस्कुराने की उम्मीद थी
वहाँ वे स्तब्ध होने लगीं,
जहाँ उनसे मेहनत की उम्मीद थी
वहाँ वे यातना कमाने लगीं
जहाँ उनसे बोलने की उम्मीद थी
वहाँ वे सिर्फ अकुलाने लगीं
    उनके मन के भीतर दरअसल एक कुतुबमीनार निर्माणाधीन थी
    उनके और उनके माहौल के बीच
    एक समतल मैदान निकल रहा था
    जहाँ चौबीसों घंटे खट्खट् हुआ करती थी।
यह उन दिनों की बात है जब अनिवासी भारतीयों ने
अपनी गोरी प्रेमिकाओं के ऊपर
हिन्दुस्तानी दुलहिनों को तरजीह देना शुरू किया था
और बड़े-बड़े नौकरशाहों और नेताओं की बेटियों ने

अंग्रेजी पत्रकारों को चुपके से बताया था कि
एक दिन वे किसी न किसी अनिवासी के साथ उड़ जाएँगी
क्योंकि कैरियर के लिए यह जरूरी था
कैरियर जो आजादी था

उन्हीं दिनों यह हुआ
कि सीलमपुर के जो लड़के
प्रिया सिनेमा पर खड़े युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे
वहाँ की सौन्दर्यातीत उदासीनता से बिना लड़े ही पस्त हो गए
चौराहों पर लगी मूर्तियों की तरह
समय उन्हें भीतर से चाट गया
और वे वापसी की बसों में चढ़ लिए

उनके चेहरे खूँखार तेज से तप रहे थे
वे साकार चाकू थे,
वे साकार शिश्न थे
सीलमपुर उन्हें जज्ब नहीं कर पाएगा
वे सोचते आ रहे थे
उन्हें उन मीनारों के बारे में पता नहीं था
जो इधर
लड़कियों की टाँगों में तराश दी गईं थीं
और उस मैदान के बारे में
जो उन लड़कियों और उनके समय के बीच
जाने कहाँ से निकल आया था
इसलिए जब उनका पाँव उस जमीन पर पड़ा
जिसे उनका स्पर्श पाते ही धसक जाना चाहिए था
वे ठगे से रह गए

और लड़कियाँ हँस रही थीं
वे जाने कहाँ की बस का इन्तजार कर रही थीं
और पता नहीं लगने दे रही थीं कि वे इन्तजार कर रही हैं।

हिन्दू देश में यौन-क्रान्ति

मर्दों ने मान लिया था
कि उन्हें औरतें बाँट दी गईं
और औरतों ने
कि उन्हें मर्द

इसके बाद विकास होना था
इसलिए
    प्रेम और काम, और क्रोध और लालसा और स्पर्द्धा,
    और हासिल करके दीवार पर टाँग देने के पवित्र इरादे के पालने में
बैठकर सब झूलने लगे
परिवारों में, परिवारों की शाखाओं में
कुलों और कुटुम्बों में–जातियों-प्रजातियों में
    विकास होने लगा
जंगलों-पहाड़ों को
म्याऊँ और दहाड़ों को
रौंदते हुए क्षितिज-पार जाने लगा
इतिहास के कूबड़ में
ढेरों-ढेर गोश्त जमा होने लगा
पत्थर की बोसीदा किताब से उठकर डायनासोर चलने लगा

कि यौवन ने मारी लात देश के कूबड़ पर और कहा–
रुकें, अब आगे का कुछ सफर हमें दे दें

पहले स्त्री उठी
जो सुन्दर चीजों के अजायबघर में सबसे बड़ी सुन्दरता थी
और कहा, कि पेडू में बँधा हुआ यह नाड़ा कहता है
कि कीमतों का टैग आप कहीं और टाँग लें महोदय

इस अकड़ी काली, गोल गाँठ को अब मैं खोल रही हूँ

सुन्दरता ने असहमति के प्रचार-पत्र पर
सोने की मुहर जैसा सुडौल अँगूठा छापा और नाम लिखा–अतृप्ति

कूबड़ थे जिनमें अकूत धन भरा था
कुएँ थे जिनमें लालसा की तली कहीं न दिखती थी
पर सुन्दरता का दावा न था कि वह इस असमतलता को दूर करेगी
इरादों की ऋजुरैखिक यात्रा में वह थोड़ी अलग थी
उसने एक नई धरती की भराई शुरू की
जो सितारे की तरह दिखती थी
चाँद की तरह
जिसकी मिट्टी में गुरुत्व नहीं था
जिसके ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ आसमान था
तो भी घर-घर में एक इच्छा जवान होती थी
कि बेशक अमेरिका के बाद ही
पर एक दिन हम भी वहाँ जाकर रहेंगे

आँगन-आँगन कामना का इस्पात घिसता था
    बुझी-गीली राख में रात-दिन
और तश्तरी की धार तेज होती जाती थी
तश्तरी घूमती थी और काटती थी
घूम-घूमकर काटती कतरती थी ककड़ियों-खरबूजों की तरह
हिन्दू देश में हिन्दुओं को

अपनी सांस्कृतिक दुविधाओं में खड़े
वे खच-खच कटते थे
अपनी विविधताओं में बुझे मोतियों से जड़े
धर्म के सुविधाजनक-उपेक्षित पिछवाड़े पड़े
वे चमार, लुहार, कुम्हार
ब्राह्मण, बनिए, सुनार

कहीं न थी पूरी तलवार

केवल धार
सड़क पर चिलचिलाती धूप में लहराती
निमिष-भर को दिखती
और खरबूजों-तरबूजों की तरह फले-फूले
और पाला खाई टहनियों-से सूखे-तिड़के
मर्दों के मेदे में उतर जाती
मनु का देश काँखता खड़ा रह जाता
और वह अगली धूप में पहुँच जाती
सारे पाण्डव, सारे कौरव, सारे राम, सारे रावण
अपने रचेताओं को पुकारते युद्ध से बाहर हुए जाते थे
दूर खड़े अपने हथियार चमकारते
चरित्रवान आत्माओं को जगाते—कहते,
यौवन ने मचा दिया ध्वंस
कल तक कैसे शान्त खड़ी लहराती थी संयम की फसल
आह, इतने आक्रामक तो न थे हिन्दू आदर्श

ये तो रास्ता छेंककर खड़ी हो जाती है
ये कौंधती टाँगें,
ये सुतवाँ नितम्ब, ये घूरते स्तन, ये सोचती-सी नाभि
सर्वत्र प्रस्तुत—कि जैसे हाथ बढ़ाओ, छू लो, खालो
पर इरादा कर बढ़ो तो...अरे सँभालो...
यही क्या हिन्दू सौन्दर्य है !

चकित थे हिन्दू
बलात्कार की विधियाँ सोचते, घूरते, घात लगाए, चुपचाप देखते, सन्नद्ध
कि भीम के, द्रोण के देश में जनखापन छाया जाता है
कि एक ही आकृति में स्त्री आती है और पौरुष जाता है
कि दृश्य यह अद्‌भुत है
पूछते विधाता से हाथ जोड़कर प्रार्थना में
और शाखा में पवन-मुक्तासन बाँधकर संचालकजी से—

कि इस दृश्य का लिंग क्या है, प्रभो !

हम क्रान्तिकारी नहीं थे

हम क्रान्तिकारी नहीं थे
हम सिर्फ अस्थिर थे
और इस अस्थिरता में कई बार
कुछ नाजुक मौकों पर
जो हमें कहीं से कहीं पहुँचा सकते थे
अराजक हो जाते थे
लोग जो क्रान्ति के बारे में किताबें पढ़ते रहते थे
हमें क्रान्तिकारी मान लेते थे
जबकि हम क्रान्तिकारी नहीं थे
हम सिर्फ अस्थिर थे

हम बहुत ऊपर
और बहुत नीचे
लगातार आते-जाते रहते थे
हम तेज भागते थे
अपने आगे-आगे
और कई बार हम पीछे छूट जाते थे

कई-कई दिन अपने से भी पीछे
घिसटते रहते थे

कोई भी चीज़ हमें देर तक
आकर्षित नहीं करती थी

हम बहुत तेजी से आकर चिपकते थे

और अगले ही पल गालियाँ देते हुए
अगली तरफ भाग लेते थे

ज्ञान हमें कन्विंस नहीं कर पाता था
और किताबें खुलने से पहले
भुरभुरा जाती थीं

हम अपना दुख कह नहीं पाते थे
क्योंकि वह हमें झूठ लगता था

हम अपना सुख सह नहीं पाते थे
क्योंकि उसके लिए हमारे भीतर कोई जगह नहीं थी
और वह हमें बहुत भारी लगता था

हमारे आसपास बहुत सारी ठोस चीजें थीं
लेकिन हमें लगता रहता था
कि किसी भी क्षण हम हवा होकर उनके बीच से निकल जाएँगे

और फिर किसी के हाथ नहीं आएँगे
हम बहुत अकेले थे
और भीड़ में स्तब्ध खड़े रहते थे
लोग हमें छूने से डरते थे
जैसेकि हम रेत का खम्भा हों
हम रेत का खम्भा नहीं थे
लेकिन लोहे की लाट भी नहीं थे,
हम सिर्फ यह नहीं समझ पाए थे
कि भीड़ से बाहर रहते हुए भी भीड़ में कैसे हुआ जाता है
जबकि ज्यादातर चीजें इसी पर निर्भर थीं

कोई शिक्षा संस्थान हमें चालाकी नहीं सिखा पाया था
मार्च की गुनगुनी हवा हमें पागल कर देती थी
और हम सबकुछ भूल जाते थे

हम प्यार करना चाहते थे
लेकिन कर नहीं पाते थे
हम लिंगभेद से परेशान थे
और सम्बन्धभेद से भी

समर्पित योनियाँ और आक्रामक शिश्न
हमारी वासना की नैतिकता को कचोटते थे
और हम एक बलात्कार को अनन्तकाल के लिए स्थगित कर देते थे

हम अपने ही शरीर में एक शिश्न और एक योनि साथ-साथ चाहते थे
ताकि हमें भाषा का सहारा न लेना पड़े

हमारे पास बहुत कम शब्द रह गए थे
जिन पर हमें यकीन था
और उनका इस्तेमाल हम कभी-कभी करते थे

हम गूँगे हो जाने को तैयार थे
पर उसकी भी गुंजायश नहीं थी
हर बात का जवाब हमें देना पड़ता था
और हर सवाल हमसे पूछा जाता था

हर जगह, हर समय एक युद्ध चल रहा था
हम लड़ना नहीं चाहते थे
लेकिन भागना भी हमारे वश में नहीं था

हम हारे, हम थके, हम पीछे हटे, हमने सारे हथियार उन्हें सौंप दिए
बाक़ायदा उनसे पिटे भी
लेकिन हमें जाने नहीं दिया गया

हमने परम्परागत आपत्तियों को मौक़ा देना छोड़ दिया
परम्परागत पैंतरों को उत्तेजित करना छोड़ दिया
इस तरह हम फालतू हुए

युद्ध के लिए बेकार
तब उन्हें यकीन हुआ कि हम लड़ नहीं सकते

वे एक-दूसरे को लड़ने की सुविधा देते हुए लड़ रहे थे
उनके बीच एक समझौता था
जो अनन्त से चला आ रहा था,
हमने उसे तोड़ा
इस तरह युद्ध क्षेत्र के बीच हम बचे

निस्सन्देह हमारा युद्ध नहीं था वह
और हम शुरू से इसे जानते थे

जो भी हमसे भिड़ा छटपटाते हुए मरा
क्योंकि वह लड़ने का आदी हो चला था
और हम बैठे सिगरेट पीते रहते थे

हम दफ तरों से, घरों से, पिताओं और
पत्नियों से भागकर
सड़कों पर चले आते थे
जो सूनी होती थीं,
और बहुत सारे लोग उन पर आवाज़ किए बगैर रेंगते रहते थे

हर सड़क से हमारा कोई न कोई रिश्ता निकल आता था
और हम कम-से-कम एक दिन उसके नाम कर देते थे

हम मौत से भाग रहे थे
एक दिन हमें अचानक मालूम हुआ
कि वह हमारे पीछे-पीछे चल रही थी
हमारा हर क़दम मौत के आगे था
और उसका हर क़दम हमारे पीछे

हम जीवन-भर एक भी क़दम अपनी इच्छा से नहीं चले

हमें कोई पीछे से धक्का देता था
हमें सिर्फ भय लगता था
वही हमारी इच्छा थी

हम क्रान्तिकारी नहीं थे
हम सिर्फ अस्थिर थे
और स्थगित...

ये हमने मरने के बाद जाना कि
वह स्थगन ही
दरअसल उस समय की सबसे बड़ी क्रान्ति था

कि जैसे रिक्शेवाले ने प्रेम किया हो

दिल्ली-बम्बई की औरतों ने
नन्हे-मुन्ने कपड़े पहनने से पहले
देश के ग़रीबों की राय नहीं ली
यह पहली गलती थी

उसके बाद तो
क्योंकि गलतियों से गलतियाँ जन्म लेती हैं
हर सुबह गलती की तरह होने लगी
यूँ कि रोज सुबह सूरज निकलता
और छूटते ही कहता—धुत् तुम्हारी ऐसी तैसी, और सिर झुकाकर बैठ जाता

यह प्रेम के तरीकों पर शोध का दौर था
देह के देवत्व पर रात दिन काम चल रहा था
वात्स्यायन की एक टीका रोज बाजार में आती थी
और प्रेम प्रीतिभोज में कड़ाहों की तरह जगह-जगह चढ़ा हुआ था
खौल रहा था—पक रहा था

पर रिक्शेवाले इसमें शामिल न थे
वे अस्फुट स्वर में गालियाँ देते जाने किसे
जब लैला उनके पास से गुजरती—जैसे मन्त्र बुदबुदाते हों
वे रिक्शे को खड़ंजे पर वहशियाना दौड़ाते
कि जैसे लैला लकड़ी की हो
या कि उसे लकड़ी कर देना हो
वे पैडल पर सीधे खड़े होकर तूफानी मोड़ मुड़ते
और दुनिया की तमाम अप्राप्य औरतों की शान में कुछ कहते जिसे समझना मुश्किल होता

और घर जाकर
अपनी मैली बिसाँधती औरतों को
कोहनियों से कूटते
कि जैसे उनके लिए प्रेम को असम्भव कर देने की गलती भी उन्हीं की हो

कागजों से खेलती सभ्यता
उन्हें यूँ लगती
कि जैसे नामर्दी का मन्दिर सजता हो
वे अपनी मर्दानगी पर अडिग थे
और रह-रहकर कहा करते थे
कि बस एक रात इसे मुझे दे दो
फिर देखो कैसे खिलती है यह कली

वे लेटे रहते थे
रिक्शों के छज्जे ताने
सोसाइटियों की कुशादा, गर्म सड़कों के किनारे
कि जैसे समन्दर में तूफान हो
और वे कुदरत के इशारे का इन्तजार कर रहे हों
और कतरते रहते
फिल्मी कतरनें
जिन्हें पहनकर उतरती थी धीरे-धीरे-धीरे परी
चौथे-पाँचवें या जाने कौन से आसमान से
वे हँसते रहते
बुड्ढियों के पजामों और बुड्ढों के निक्करों पर
और नजाकत पर जो जाने कैसी-कैसी नौटंकियाँ करती फिरती थी

वे डरते नहीं थे
उनके पास रिक्शा था
और हुशियारी की लम्बी ग्रामीण परम्परा
जो उन्हें अकाट्य लगती थी। और ह्यूमर जिसमें हिंसा और करुणा गड्ड-मड्ड रहती थी।
और आँच जो आग से उनकी हिफाजत करती थी (हालाँकि वे फूल नहीं थे)

लेकिन वे रह जाते थे
मुँहबाए फूल की ही तरह
जब चिलचिलाती। अपने ही ताप से काँपती। सफेद टीन-सी धूप में
जैसे सट ही जाती हो आकर परी
कि जैसे आग की एक लपट ने ही पहन लिये हों फूल
और कहती हो कि चलो वक्त है वापसी का

और तब अचानक
सैकड़ों सालों के इन्तजार के बाद
दुनिया बदलना शुरू होती
कि जैसे कोलतार के गगनचुम्बी खम्भे
पिघल-पिघल जज्ब होते हों रेत में
कि जैसे दुखों और उदासियों के
खुदरा बुराइयों और शिशु बदमाशियों के
आड़े-टेढ़े पत्तर आँधियों में उड़ जाएँ
कि जैसे सारी धरती के दरख्त
लाइन बनाकर बैंड बजाते चारों ओर से घिर आएँ
कुदरत सारी 'हैरॉ-हैरॉ' हो जाए

तब वे हाथ मारते
एक पराई दुनिया की पराई हवा में किसी भाषा के एक शब्द के लिए
जो या तो उनके दिल को बोल दे
गर नहीं तो इस इन्द्रजाल की जादू-गाँठ खोल दे
कि इस हार के मुँह से
वे नहीं दिखना चाहते थे ऐसे कि कोई देखकर कहे
कि देखो रिक्शेवाले ने भी प्रेम किया।

भूखे बच्चों के सप्ताह में

वह भूखे बच्चों का हफ्ता था
जैसे कहा करते हैं
कि फलाँ साल दुर्घटनाओं का था
या जैसे कोई दिन सुन्दर लड़कियों का होता है
कि सुबह घर से निकले तो एक दिखी
और फिर शाम तक जब भी कहीं से पिटकर निकले
बाहर खड़ी एक मिली

वे लोग
—जैसाकि दफ़्तर जाते हुए लोग उन्हें कहा करते हैं
पूरे सप्ताह मुझे यहाँ-वहाँ मिलते रहे
अर्थशास्त्र पर लेक्चर सुनकर निकला
तो बाहर एक खड़ा था

साम्प्रदायिकता पर नाटक देखकर बाहर आया
तो एक खड़ा दिखा

बस से उतरा और दफ़्तर की तरफ़ चार क़दम चला
तो देखा एक पीछे-पीछे आ रहा है
जैसे कोई आवाज़ हो

दुकान में गया
और जब बाहर आया तो देखा एक खम्भे से लगा खड़ा था
मुझे ऐसे देख रहा था
जैसे वह पुलिस हो, मैं चोर

शनिवार को अम्बेडकर पार्क गया
जहाँ हिन्दू युवकों को लाठी सिखाई जाती है
और जब झुटपुटा गिरे निकला
तो देखा दीवार से सटे दो बैठे हैं
मुझे देखकर कसमसाए
जैसे मैं नरेन्द्र मोदी और वे मुसलमान हों

मैं क्या कर सकता था
यह हफ़ ता ही दरअसल उनका था
जैसे यू.एन.ओ. बच्चों के दिन और साल मनाती है
ऐसे ही भूखे बच्चों की भी कोई यू.एन.ओ. होगी

आगे इतवार था
उस दिन भी एक दिखा
कड़ाके की सर्दी में सिर्फ कच्छा पहने था
और एक खुशपोश आदमी को नंगा करने पर लगा हुआ था
मैंने टोका तो बोला
मेरे थे पाँच रुपए। गिर गए थे। इन्होंने उठा लिए। दिलवाओ
आदमी बोला भाई साहब
आप जानते नहीं इन्हें। ये लोग ऐसे ही करते हैं
मैं सुन ही रहा था
कि वह सुनकर लौट पड़ा
मैंने उसे कोहरे में जाते देखा
जैसे सिल की बेकारी से ऊबकर बट्टा जा रहा हो
चुप ही रहते हुए मैंने सोचा
हो सकता है सचमुच अब ये ऐसे ही करने लगे हों। फिर सोचा
हो सकता है अगला हफ़ ता इनके ऐसे करने का हो।

पैसे के बारे में एक महत्त्वाकांक्षी कविता के लिए नोट्स

1

मैं पैसे नहीं कमाता
जब बहुत ख़ुश होता हूँ, तब भी
कोई योजना नहीं बनाता
बस तृप्तिजी के पास जाकर कुछ शुरुआती बातें करता हूँ
जो अरसा हो गया, शुरुआत से आगे नहीं बढ़ीं

पैसे कमाना एक अद्भुत बात है
न कमाना उससे भी ज़्यादा
आप अगर पैसे नहीं कमाते
तो यह कुछ-कुछ ऐसा है
कि आप जेम्स वाट हैं
और रेल का इंजन नहीं बना रहे
यह दुनिया से विश्वासघात जैसी कोई चीज़ है

अकसर नहीं,
लगभग हमेशा मैं पैसों के बारे में सोचता हूँ
और इस सोचने में और भी कई चीज़ें साथ-साथ सोची जाती रहती हैं
मसलन, पैसे न कमाना
या थोड़े से पैसे कमाना और उन्हें खाने बैठ जाना—आगे और न कमाना;
पुराने, जिनका शरीर आदी है, ऐसे कपड़े पहनकर किसी पुरानी, जो होते-होते
घर जैसी हो गई है, ऐसी सार्वजनिक जगह पर निकल जाना
एक शहर में बरसों रहते हुए भी राशनकार्ड न बनवाना, फोन न लगवाना;
सालों पुराने दोस्तों से बार-बार ऐसे मिलना ज्यों आज ही मिले हैं
और यूँ विदा होना ज्यों फिर मिलना बाकी रह गया हो;

औरतों को देखकर सिमट जाना—खुलेआम जनाना होना;
हिंसा का उचक-उचककर प्रदर्शन न करना—मर्दानगी पर शर्म खाना;
अश्लील चुटकुलों पर खिसिया जाना, उनका फेमिनिस्ट विश्लेषण करना;
राजनीतिवालों पर, उनके घोटालों पर बहस न करना;
गम्भीर, उलट-पलट कर देनेवाली मुद्राओं पर ठठाकर हँस पड़ना;
और खूबसूरत कमाऊ आदमी के पाद पर आनन्दित हो उठना—
—लगता है, ये सारी चीजें एक साथ होती हैं
पैसे न कमाना इन सबसे मिलकर बनता है

कभी-कभी यूँ भी सोचता हूँ
कि बस पैसे ही कमाना एक काम रहता
तो कितना सुख होता
चलते-चलते अचानक भय से न घिर जाते
चौराहों पर खड़े रास्ते ही न पूछते रहते
अपने साथ लम्बी-लम्बी बैठकों में अपने ही ऊपर मुकदमे न चलाते
अच्छे-बुछे और सही-गलत की माथापच्ची न होती
कैसे भी बनिए के साथ ठाठ से रह लेते—यूँ मिनट-मिनट पर सिहर न उठते
सुन्दर लड़कियों के लिए सड़कों और पार्कों की खाक न छानते फिरते
झोंपड़-पट्टियों में झाँक-झाँककर न देखते, कि क्या चल रहा है
बड़े नितम्बवाले मर्दों को देख बेकली न होती—फसक्कड़ा मार कहीं भी बैठ जाते
और मजे से गोश्त के फूलने का इन्तजार करते
दुनिया में पायदारी आती
और धन्नो का पाँव धमक-धमक उठता
एक दिन देखा कि सारे विचार और सारी धाराएँ
तमाम महान उद्देश्य और सारे मुक्तिकारी दर्शन
दिल्ली के बॉर्डर पर खड़े हैं
यूँ कि जैसे ढेर सारे बिहारी और पहाड़ी और अगड़म-सगड़म मद्रासी
हाजत की फरागत में पैसा-पैसा बतियाते हों
तब तो जिगर को मुट्ठी में कसकर सोचा,
कि शुरू से ही पैसा कमाने में लग जाते
तो आज इस सीन से भी बचते

2

लेकिन हाय, सोचने से पैसे को कुछ नहीं होता
न वह बनता है, न बिगड़ता है
कितने ही सोचते बैठे रहे और सोचते-सोचते ही उठकर चले गए
हमारे पूज्य पिताजी के पूज्य पिताजी कहा करते थे
कि उनके पूज्य पिताजी ने उन्हें बताया था
कि पैसे को ऐसी बेकली चाहिए
जैसी लैला के लिए मजनूँ और शीरीं के लिए फरहाद को थी
लेकिन इधर हमारे छोटू ने बताना शुरू किया है कि नहीं
इसके लिए, जैसाकि शिवखेड़ा
और दीपक चोपड़ा बताते हैं—मन और आत्मा की शान्ति चाहिए
और उसमें योगा बहुत मुफीद है
उसका कहना है
कि सोचना पैसे को रुकावट देता है
और इस रुकावट के लिए भी आपको खेद होना चाहिए
क्योंकि आप अगर सोचने से खारिज हो जाएँ
तो फिर सारा सोचना पैसा खुद ही कर ले
कि उसके घर सोचने की एक स्वचालित मशीन है

और पीढ़ियों के इस टकराव में—जिसमें मेरी कोई 'से' नहीं
इधर कुछ ऐसा भी सुनने में आया है
कि जिनके पास पैसा है, दरअसल उनके पास इतना पैसा है
कि कुछ दिनों बाद वे उसे बाँटते फिरेंगे
कि जिस तरह आज हम गैरपैसा लोग
अपनी बहानेबाजियों और चकमों-चालाकियों से दुनिया की नाक में दम रखते हैं
उसी तरह वे जरा-जरा-सी बात पर
बेसिर-पैर बहानों के सहारे
बोरा-बोरा-भर पैसा आपके ऊपर पटक भाग जाया करेंगे
कि जिस तरह हमारे चोर पैसे की बेकली में रात-दिन मारे-मारे फिरते हैं
उसी तरह वे चोरी-चोरी आएँगे और आपकी रसोई में पैसे फेंककर गायब हो जाएँगे

मैं कहता हूँ कि हाय, तब तो पैसे कमाना कोई काम ही न होगा
तो वे बताते हैं कि नहीं भाया,
तब हमें खर्च करने में जुटना होगा
और उसके लिए भी वैसी ही बेकली चाहिए
जैसी मजनूँ को लैला के लिए और फरहाद को शीरीं के लिए थी

(और हाँ,
जिस दिन मैं यह कविता पूरी लिखूँगा
अपने पिता के बारे में भी लिखूँगा
जिनका जाने कितना तो कर्ज
मुझे ही चुकता करना है !)

यहाँ आपकी छेनी गड़ी हुई है

सच की तेज़ हवाओं के आगे
झूठ का पर्दा बड़ा झीना था

झूठ के झीने पर्दे को
काँपती उँगलियों से गुलामों ने
अपनी चोर-आज़ादियों के दरवाज़े पर बीना था
बेहद सतर्क, चींटी जितने कद-बुत की
वह बेईमानी
ताक़त के हाथी के पैरों में
जलती रेत में
छिपती फिरती
निर्धन की कल्लो बिटिया-सी दुबली-पतली

यह बेईमानी उस सच के खिलाफ जन्मी थी
जो सिर्फ़ ताक़त के काम आता था
इससे महान् मनुष्य के महान् भविष्य को कोई खतरा न था
यह भूख से लथपथ महाराजिन के नेफे में ठुँसी बासी रोटी थी
जिससे धर्म के महाभोज में अकाल नहीं पड़ सकता था

फिर भी वह राजा को अखरी
उसके अखण्ड राजापन में चटकन-सी चटकी

ऐसा क्यों–
हमने जब दुनिया की छत को कन्धे तक ही ऊँचा रखा
फिर इनके सिर सीधे क्यों हैं
हमने जब इनसान को कम-इनसान बनाने की इतनी बड़ी मशीन लगवाई

फिर यह अमृत-गन्ध कहाँ से आई–
बेईमानी के दड़बे पर छापा मारो

तब, जहाँ ज़िन्दगी का कोई मकसद न था
जहाँ पराए अनुशासन और अजनबी क़ानून ने
मन की सात तहों के नीचे
नैतिकता के छिपे स्रोत को सोख लिया था
जहाँ क़दम-क़दम पर सवाल पूछे जाते थे
और जहाँ जवाबन ज़िन्दगी बदले की कार्रवाई हो चली थी
वहाँ
विधिसम्मत कर्तव्य की धवल इस्पाती चादर के कोने में
सिकुड़े बैठे
बीड़ी पीने के चोर वक्त पर छापा मारा गया

निकली लाश
ताक़त के मालिक ने
अपने पालतू और उत्पादक सत्य के नाखूनों से
कमज़ोरी के ग़ुलामों के
भयभीत हाथों से बुने
झूठ के जर्जर पर्दे को
झर्र-से फाड़ा

निकली लाश

यह
न तो बारूद बिछाती थी राजा के रस्ते में
न तीर चलाती थी
नाचते-गाते-जाते-मदमाते जुलूस पर
बस नन्ही-मुन्नी क़ानून-बदर इच्छाओं के
तार कातती थी
झुकाए गर्दन दफ्तर की देबुल पर
उसको पकड़कर लाया गया
और राजा ने उसके मस्तक का ढक्कन खोल

निकाली बेईमानी
छोटे इनसान का छोटा चूजा झूठ
फुद-फुद बेईमानी, तड़पकर भागे
ग्रामीणों की रसोई की काली छत जैसे सिर के गुम्बद में
उसका नन्हा-सा मस्तिष्क
गोरैया-सा चौंका

साहब ने सन्तोष की लम्बी साँस भरी
बाकी और कहाँ है बोलो–कड़का
सारा झूठ निकालो
कतरा-कतरा बाहर रख दो

और कहाँ है, सर
टुकड़े-टुकड़े मस्तक
सारा ज़ोर लगाकर अपना, और सच समेट अपने सारे पुरखों का, बोला
यही जरा-सा तो था
इतनी जगह कहाँ है
यही जरा-सी तो है
यहीं आपकी छेनी गड़ी हुई है,
मालिक और नहीं है,
अब जाने दें

और चला गया वह
साहिबे-ताक़त के ईमानदार पहलवानों को गच्चा देकर
वह मरघिल्ला
मुट्ठी-भर हड्डियों का मालिक टुटपूँजिया
झूठ का परचूनिया
चमड़े के सिक्के ढालनेवाली उस भव्य टकसाल में
सच की प्रार्थना में सिर झुकाए-बुदबुदाते
सच के कारिन्दों के बीच
भूमिगत हो गया।

लालबत्ती पर कविता वर्कशॉप

कविता खोजने के गर्दनतोड़ कारोबार में
दिल के आकार के लाल गुब्बारों में भी तलाश की जाएगी कविता
एक दिन
कवि आएँगे सब तरह के सब जगह के
लालबत्ती चौराहे पर
जहाँ एक ना-आदमी सा आदमी, और ना-बच्चों से बच्चे
बेचेंगे दिल के आकार के लाल गुब्बारे
(जैसे आदमियों के पास इससे अच्छा खिलौना ही कोई न बचा हो !)
और कवि खोजेंगे,
चाहेंगे एक कविता
एक फैसले की तरह सुनाने के लिए सभ्यता पर
कि जैसे सभ्यता में कविता ही रह गई हो एक न्यायाधीश !

कवि-एक
कहेगा, देखो बिकता है दिल
हृदयहीन इस महानगर में रहना है
मुश्किल, चलो चलें
जहाँ कोई न हो दूकानदार

कवि-दूसरा कहेगा तब
भागने से क्या होगा अब
देखो, इस गुब्बारे को–हवा में मत देखो
धुएँ में देखो इस गुब्बारे को, इस गुब्बारे में
हवा मत देखो, जहर देखो
और हमें यह पीना है

जीना है
कवि तीसरा और चौथा कहेगा तब एक स्वर में–
धौंक रहा यह सचमुच का दिल है
सभ्यता हमारी यह कातिल है

कुछ और कहेंगे जो आए होंगे कस्बे से
मनुष्य की लालसा, दरअसल यह उड़ती है
कटु यथार्थ ने, लेकिन, डोरी थाम रखी है

तभी आएगा वह, झाँकेगा
कार के शीशे से, और कवियों के कविता परदे से
और फुँफकारेगा, 'ले लो ले लो'

हम देखेंगे उसे, उसकी आवाज को न सुनते हुए,
देखते हुए उसके नीले होंठों को
और पूछते हुए, एक दूसरे से
किस फिल्म में देखा था, ऐसा बलराज साहनी, ऐसी नरगिस

और बचा हुआ अन्तिम कवि
अपनी कविता की पहली पंक्ति सोचेगा
जो आज के सत्र की विसर्जन पंक्ति होगी

लालबत्ती हड़बड़ाकर हो जाएगी हरी
थड़-बड़ मच जाएगी
हर कोई भागना चाहेगा, अपने-अपने हिस्से की धरती नोचकर
अपने ही नाक की सीध में
और बीच में घिरा होगा बलराज साहनी–घिरी होगी नरगिस
और दिल के आकार के लाल गुब्बारे
हवा में सीधे खड़े देखेंगे जानेवालों का यूँ भी जाना

अन्तिम कवि सोच रहा होगा,
अपनी कविता की पहली पंक्ति

जो आज के सत्र की विसर्जन पंक्ति होगी
चारों दिशाएँ गा रही होंगी–
विसर्जित भाषा का व्यौपार स्वाहा
विसर्जित झूठों का संसार स्वाहा
विसर्जित चिन्ता के गद्दार स्वाहा
विसर्जित चिन्तन यह फलदार स्वाहा
विसर्जित मीडियोकर की मार स्वाहा
विसर्जित कवियों का दरबार स्वाहा
विसर्जित चौराहा-बाजार स्वाहा
विसर्जित स्कूटर और कार स्वाहा
विसर्जित अपनी हा-हाकार स्वाहा
विसर्जित उनकी जय-जयकार स्वाहा

और घनघोर विसर्जन के इस वातावरण में
अन्तिम कवि एक-एक अक्षर चुनता जा रहा होगा
अपनी कविता की पहली पंक्ति के लिए
जैसे कि तितलियाँ, या मक्खी, या मच्छर, या जैसे गुब्बारे पकड़ रहा हो हवा में।

एक दृश्य की समग्र और कलात्मक अभिव्यक्ति की समस्या

अपना कुछ काम मुझे कई बार
दूसरे कलाकारों को बाँटना पड़ जाता है
मसलन इन दो औरतों के
चेहरे की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए
मैंने एक फोटोग्राफर और एक चित्रकार को आमन्त्रित किया

ये दोनों औरतें शायद आज ही बिहार से आई हैं
पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन से उतरकर
वे लालकिले तक पैदल चली होंगी
उन्होंने कई लोगों से मयूर विहार फेज-3 की बस के बारे में पूछा होगा
यह पता तो उन्हें गाँव से ही लग गया होगा कि दिल्ली में बसें चलती हैं
यह भी जानती होंगी कि दिल्ली में लोग इतने बिजी होते हैं
कि एकाध बार में आप अपने ठिकाने का पता नहीं कर सकते
और यह तो उन्हें बिल्कुल ही मालूम होगा

कि दिल्ली में सब खड़ी हिन्दी बोलते हैं
अपनी बोली में बच्चों को डाँटते-पुचकारते हुए
उन्होंने कई लोगों से हिन्दी में 'फैजत्री' की बस के बारे में पूछा होगा

उन दोनों के पास एक-एक बच्चा है
एक का गोद में, दूसरी का पाँव चलता
शायद दोनों ही लड़कियाँ हैं
पाँव चलती तो लड़की ही है

लालकिले पर आकर उन्हें आरटीवी मिली
मैं उन्हें आरटीवी में देखते हुए इस वक्त
सोच रहा हूँ
कि जब उन्हें किसी दौड़ते हुए आदमी ने पलटकर कहा होगा
कि अरे फेजत्री तो बहुत सारी आरटीवियाँ जाती हैं
तो उन्होंने इस शब्द को अपनी ध्वनियों में कैसे सुना होगा
हारटी-भाँ, आरटी-व्हाँ, आरती-बियाँ या हारती-भी-हाँ
उन्होंने इनमें से कोई नाम लेकर पूछा होगा कि कहाँ मिलेगी फैजत्री आना है

आखिर उन्हें आरटीवी मिली होगी
और अब वे सबसे पिछली सीट पर बैठी हैं
छोटा बच्चा गोद में है और पाँव चलती लड़की नीचे पालथी मारे हुए है
अपना सिर उसने अपनी माँ के घुटने से टिका रखा है
बीच-बीच में वह सो जाती है
तब उसकी माँ फटाक से एक हाथ उसके सिर पर मारती है

यहाँ मुझे एक मूवी कैमरामैन की जरूरत महसूस हुई
क्योंकि सही सीन दिखाने के लिए सिर्फ इतना कहना काफी नहीं
कि तब उसकी माँ फटाक से एक हाथ उसके सिर पर मारती है
यह पढ़कर आप अपने पर्यावरण की किसी औरत को देखने लग सकते हैं
वे भी बस में सोनेवाली लड़की को फटाक से सिर में मारती हैं
और बराबर इतनी सक्रिय-संलग्न रहती हैं, अपने चेहरे में और साँसों को लेने छोड़ने
में इतनी तत्पर-प्रस्तुत रहती हैं कि मारने के लिए ही बनी दिखती हैं

लेकिन यह औरत
इस एक हरकत के न बाद और न पहले
इतनी भी जीवित नहीं लगती
कि काले पत्थर की मूर्तियों के बीच अगर वह रखी हो तो आप उसे देखकर चौंक भी सकें। निश्चित ही एक शिल्पकार उसे बनाकर कई लाख रुपए और शाबासी लूटता
वह अगर खुद ही वहाँ जाकर बैठ जाए तो आप उसे वैसे ही देखते हुए निकल जाएँगे।
जैसे मूर्तियों को

लेकिन यहाँ वह हरकतज़दा ज़िन्दा लोगों के बीच बैठी है। और आप उसे मूर्ति की तरह नहीं देखते
आप उसे जिन्दा औरत की तरह देखते हैं
हालाँकि एक अंडे की तरह सफेद बस में। फिर टमाटरों और अन्य फल-सब्जियों के गुणों से युक्त लोगों के बीच में।
आप उसे कभी देखते ही नहीं। सच तो यह है।
फिर भी एक सिद्धान्त खड़ा करने के लिए मैं कह रहा हूँ
कि आप ज़िन्दा लोगों में उसे मूर्ति की तरह नहीं देखते

लेकिन दिखती है वह मूर्ति की तरह ही
अपने इतने स्थिर काले रंग और इतने स्थिर काले कपड़ों में
वह तीखी नाकवाली, गालों की उभरी हड्डियोंवाली, सूखे–लकड़ी से तराशे बालोंवाली, मैली मोटी कमली जैसी ओढ़नी से आधा माथा ढके हुए
वह औरत
हरगिज आपको मूर्ति की तरह ही दिखती है

यही वह बिन्दु है जिसे मैं रेखांकित करना चाहता हूँ
और अगर एक कैमरामैन यहाँ होता तो आप खुद ही देख लेते
कि कंडक्टर को यह भ्रम क्यों हुआ कि वह सो रही है
जबकि उसकी आँखें खुली थीं और वह पैसे निकालने का मन बना चुकी थी
क्योंकि जब मैंने कंडक्टर की झिड़की के फौरन बाद उसे देखा
तब उसके हाथ में दस का एक नोट और चार रुपए की रेजगारी थी
और घुटनों पर मैले कपड़े की एक गाँठ खुली पड़ी थी
यानी जीवित लोगों की एक लम्बी हरकत वह तब तक कर चुकी थी

और कंडक्टर को उसके सोने का भ्रम फिर भी हुआ
ऐसी विकट मूर्तिमानता उसमें थी

दूसरी भी ऐसी ही थी
पर उसकी गोद में बच्चा गोरा था
पहली नज़र में वह मुझे दिखाई नहीं दिया था
फिर जब दिखा तो मैंने दोबारा औरत को देखा
कि शायद असल में वह भी गोरी हो
लेकिन वह उतनी ही स्थिर काली थी

बच्चे का सिर्फ रंग हरकत में था
या मुझे अपनी वर्णांधता के चलते वह हरकत में दिखा
किसी गोरे बच्चे को देखकर
अनायास ही एक राहत-सी मन में आ जाती है
कि चलो इसे कम-से-कम वे दुख तो नहीं उठाने पड़ेंगे जो बदसूरत लोगों के हिस्से में
खामखाँ आ पड़ते हैं

मैं एक नियतिवादी आदमी हूँ और अकसर किसी को भी
भाग्य की रेखा के बीच कहीं रखकर आगे पीछे के बारे में सोचने लगता हूँ
लेकिन इन औरतों के बारे में मैंने इस तरह नहीं सोचा
यह भी नहीं कि इनके दुर्भाग्य में कुछ हाथ इनकी स्याही का भी रहा होगा
कि इतना गाढ़ा रंग इनके पास था सो उन्होंने पत्थर होना ही उचित समझा कि
वह पत्थर पर ज्यादा अच्छा लगता है
इस तरह वे अच्छी भी लग रही थीं
मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अगर वे शिल्प संग्रहालय में होतीं तो बेहद कीमती होतीं

लेकिन मैंने जब उन्हें देखा
तो न सुन्दर देखा, न बदसूरत
लता मंगेशकर का एक दर्द-भरा गीत सुनते हुए। सड़क पर फिसलती गति
को तलुवों में महसूस करते हुए और उस अहसास में साँस लेते हुए जिसमें हर
नौकरीपेशा आदमी शाम होते-होते डूबने लगता है–
मैंने उन्हें अचानक देखा
और जब दोबारा देखा तो ऐसे देखा जैसे मेरी आँख आँख नहीं शीशे का टुकड़ा

हो। और सिर जो पीछे लगा हुआ है वह प्लास्टिक का डिब्बा। कि न कुछ सोचना है,
न कहना है। इस तस्वीर को जस का तस उठाकर बस अगले वक़्तों के लिए
रख देना है

और जब मैंने देखा कि ऐसा नहीं है
तो मैंने बस चाहा कि काश ऐसा होता
कि मेरा सिर तमाम दिक्कतों से भरा हुआ आदमी का सिर न होता
फोटो खींचने की मशीन होता
कि तब मैं अपने पाठकों को
भाषा के अर्द्धसत्यों से खयाली तस्वीरें बनाने के लिए अधबीच न छोड़ता
कि आज आखिरी बार जिन्दा लोगों की पथराई मूर्तिमानता की तस्वीर खींच ली जाती और
यह दृश्य सदा-सदा के लिए खंड-खंड हो जाता।

सत्यबोध के कर्मचारी, मालिक-मकान के बच्चे और समय

(हिन्दी प्रकाशन जगत और लेखक समाज के ध्यानार्थ)

जैसे कि बहुत सारे मकानों में दफ़्तर चलते हैं
ऐसे ही सत्यबोध का भी चलता है
सत्यबोध हिन्दी के नामी प्रकाशक हैं

जिस मकान में सत्यबोध का दफ़्तर चलता है
उस मकान के मालिक के दो खूबसूरत बच्चे हैं जो सुबह-सुबह एक खूबसूरत साइकिल चलाते हैं
सुबह-सुबह साढ़े नौ बजे के आसपास
जब उनकी साइकिल शिथिल हो रही होती है
और बच्चों के खूबसूरत चेहरों पर साइकिल को लेकर बदतमीज़ी उभरने लगती है
तभी सत्यबोध के कर्मचारी वहाँ पहुँचते हैं

बच्चे सत्यबोध के सबसे पहले पहुँचने वाले कर्मचारी से समय पूछते हैं
उसे लगता है कि पृथ्वी पर कहीं कुछ सुन्दर-सुन्दर-सा घटित हो रहा है
जैसे कि कहीं सूरज निकल रहा हो—वह सोचता है
और समय के बजाय उसके दिमाग़ में सूरज से मिलता-जुलता किसी किताब का टाइटल तैरने लगता है,

मसलन, सूनी घटी का सूरज : श्रीलाल शुक्ल
मसलन, सूरज का सातवाँ घोड़ा : धर्मवीर भारती
मसलन, एक हज़ार सूरज : डॉमीनिक लापियर

और वह बीड़ी सुलगा लेता है

तब तक मालिक-मकान का बच्चा एक चक्कर और लगा चुका होता है
और एक चक्कर और लगाने से पहले दूसरे बच्चे की साइकिल को झिंझोड़ देता है

सुबह के खेल में सुबह-सुबह उतरती ऊब को तोड़ने के लिए वह ऐसा करता है
जबकि सत्यबोध के बुजुर्ग कर्मचारी को लगता है कि यह बदतमीज़ी है
लेकिन वह कुछ कहता नहीं, बैठा देखता रहता है
लेकिन सत्यबोध का जवान कर्मचारी अपने आपको रोक नहीं पाता
वह भँवें सिकोड़कर कहता है, 'अरे'
लेकिन दूसरा बच्चा दूसरे बच्चे की परेशानी को ज़्यादा अच्छी तरह समझता है
वह जवाब में उसकी साइकिल को धक्का देता है और उसकी आँखों में हँसते हुए
कहता है, ''अरे...''
और वे गिरते-पड़ते, हँसते-हँसते गली का एक चक्कर और लगाते हैं

तब तक सत्यबोध के सारे कर्मचारी आ चुके होते हैं
वे भी जो नहाने-धोने का इतना ख़याल रखते हैं
कि अगर मालिक-मकान के बच्चों और साइकिलों के रंग बीच में न आएँ तो गली में वे ही वे चमकें
लेकिन मालिक-मकान के बच्चे ठीक साढ़े नौ बजे तक, जब तक सत्यबोध के दफ़्तर का दरवाज़ा नहीं खुलता, साइकिल चलाने के आदी हैं
वे फिर आकर पूछते हैं, 'अंकल समय क्या हुआ ?'
इस समय सत्यबोध के कर्मचारी रोज़
व्यंजन रेस्तराँ के बारे में बातें करते हैं
जहाँ चाय पाँच रुपए की और कॉफ़ी बारह रुपए की मिलती है—दरवाज़े पर ही लिखा है।
और जहाँ सामने वाले कम्प्यूटर कॉलेज की लड़कियाँ सुबह से ही बैठना शुरू हो जाती हैं—
वे खूबसूरत टाँगोंवाली खूबसूरत लड़कियाँ होती हैं—जो हिन्दी किताबें नहीं पढ़तीं
सत्यबोध के कर्मचारियों को प्रतीत होता है कि बच्चे
'व्यंजन' से उठकर आ रहे हैं या जाकर बैठने के लिए समय पूछ रहे हैं
उन्हें खुशी होती है कि अगर वे समय नहीं बताएँगे तो ग़लत होगा
इसलिए वे सारे-के-सारे एक साथ बताते हैं—
साढ़े नौ, और उन्हें फिर खुशी होती है कि उन्होंने
समय रहते सुन्दरता के पक्ष में कुछ बचा लिया है

तभी दफ़्तर का दरवाज़ा खुलता है और
कुछ काला-सा, कुहासा-सा वहाँ से निकलकर उन्हें घेर लेता है, और
बच्चे साइकिल को उनके दफ़्तर की खिड़की की रेलिंग से बाँधकर

ऊपर अपने घर में चले जाते हैं, और
सत्यबोध के कर्मचारी सुन्दरता का दरवाजा अपने ऊपर बन्द होता देखते हुए किताबें बनाने,
छाँटने और बेचने में लग जाते हैं

एक मशीन चालू हो जाती है। आदमी को आदमी के चौखटे में रखते हुए आदमी
से कम एक आदमी में बदलने की एक ऐसे आदमी में जिसका सुन्दरता से रिश्ता
प्राकृतिक नहीं होता जो सुन्दरता से डरता है और उसे सामने देख (अगर वह
एक फीट का, भागने के लिए रास्ता छोड़कर भी खड़ी हो, तो भी) मारे डर के
काँपने लगता है। तरह-तरह के दुःस्वप्न एक साथ उसके स्नायुतन्त्र पर टूट पड़ते
हैं। तरह-तरह की दुष्कल्पनाएँ उसे विकलांग कर देती हैं। उसकी पीठ झुक जाती
है, टाँगें चौड़ी हो जाती हैं। हाथ सिर्फ एक ही तरह से हरकत करने लगते हैं।
विविधता और विचलन से घबराहट होने लगती है

ऐसा एक आदमी बनाने की मशीन के चालू होते ही
सत्यबोध के कर्मचारी मालिक-मकान के बच्चों की सुन्दरता को एक सिरे से भुला
देते हैं

वे छोटा आदमी या आदमी को छोटा बनाने की मशीन की
पेंचदार सीढ़ियाँ चढ़ते और उतरते हुए
सख़्त खुलनेवाले कटघरों में घुसते और निकलते हुए
तेल-चुपड़ी घिर्रियों से ख़ामोशी के साथ आते और जाते हुए
नामालूम ढंग से थोड़ा-थोड़ा घिसते हुए

चार या पाँच या छह या सात या आठ या नौ या दस बजा देते हैं
लेकिन इसी बीच किसी समय मालिक-मकान के बच्चे फिर नमूदार होते हैं
शाम के एक निश्चित अर्थ की दीप्ति अपने खूबसूरत चेहरों पर सजाए

वे समय को एक काले तरल पदार्थ में बदल चुके सत्यबोध प्रकाशन
के कर्मचारियों के सामने आ खड़े होते हैं और उन्हें ऐसे देखते हैं जैसे
दीवारघड़ी को देख रहे हों और समय पूछते हैं

हमें समय का क्या पता, सत्यबोध के कर्मचारियों में से एक कहता है, बच्चे !
आप तो बड़े हैं फिर भी, बच्चा कहता है, अंकल !
कितने भी बड़े हों मालिक से बड़े तो नहीं हैं, कर्मचारी कहता है, बेटे !
और समय से मिलते-जुलते नामोंवाली किताबों के नाम उसके मस्तक में चमकने लगते हैं

समय का संक्षिप्त इतिहास : 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' का अनुवाद

लेखक–स्टीफेन हाकिंग
समय समन्दर है : लेखक–सत्य सिकन्दर
आज का समय और आज की कविता : लेखक–एक हिन्दी आलोचक

आखिरी कामरेड

आखिरी कामरेड सबसे आखिर में खड़ा था
उसका जयघोष भी सबसे आखिर में, सबसे अलग सुनाई पड़ता था
लेकिन सबसे ऊपर तो वह सबसे आकर्षक था
—सुमुख और सुदेह
इसलिए अगली पंक्ति के कई
जो अपनी सुर-मिला, सुर-मिला के चलते
किसी भी जलवायु में प्राकृतिक थे
अनायास पलटकर उसके ढिंग लग जाते थे
आखिरी कामरेड फिर भी
सबसे आखिर में रहता था

वह जात से ब्राह्मण था
शिक्षा से अंग्रेज
प्रकृति से अराजक-तानाशाह
आदतों में नशेड़ी
भावना से कलाकार
और विचार से कम्युनिस्ट
लेकिन पार्टी की विधिवत् दीक्षा उसने नहीं ली थी

वह समाज में शामिल नहीं था
क्योंकि समाज असहनीय ढंग से एकरस था
सारे विस्फोट एक ही लय में करता था
ऊब को सुरक्षा और दोहराव को स्थायित्व मानता था
कामरेड के भीतर, लेकिन कोई अलग धुन बजती थी
यह भंग और भंजन की धुन थी

वह मार्क्स के बाद कुछ करना चाहता था
इसलिए वह सबसे अन्त में खड़ा था
जब पार्टटाइम कम्युनिस्ट
अपनी नौकरियों से छुट्टी लेकर
क्रान्ति की जय गाते
और झुग्गियों में अंग्रेजी वृत्तचित्र दिखाते
उस समय भी वह सबसे अन्त में खड़ा हो
उस दिशा में देखता होता
जिसकी खोज अभी बाकी थी

वह भयानक अकेला था—
भयानक असुरक्षित
उसके पालन-पोषण में कोई खोट रह गया था
कि बलात्कार उससे नहीं हो पाता था
सम्भोग में प्रेम का
और प्रेम में थोड़ी-सी असामाजिकता का वह मुहताज था
और सामाजिकता में चुटकी-भर असहमति का
जो ऊब के लिए रामबाण थी

वह—
सफाईपसन्द—स्वास्थ्यविरोधी
विज्ञानमना—भावुक
तर्क में विकट—कुतर्क में मनमौजी
यथार्थवादी—कल्पनाप्रमत्त
देशी में उग्र—विदेशी में व्यग्र
सर्जनाकामी—विनाशकारी
—था
उसके भीतर आँधियाँ चलती थीं
सूखे पत्ते उड़ते-फिरते थे
जिनमें उसकी कला खो गई थी
क्रान्ति के हिरावल-दस्ते में वह आखिरी था
जिसे परिवर्तन-व्याकुल भीड़ की खो चुकी कला पुकारती थी

वह साम्यवाद की लौह-भित्ति में
काफ्का और कामू के लिए ताखे और मोखे रखना चाहता था
सबसे सस्ते ठेके पर सबसे महँगी दारू पीकर
वह टैक्सी ड्राइवर को साथ खाने के लिए कहता था
पार्टी नेताओं के थककर सो जाने के बाद
वह अँधेरे में निकलता था
और रेलवे-स्टेशन पर कुलियों और रिक्शाचालकों के साथ
अपने पसन्दीदा ब्रांड की सिगरेट बाँटता
और-आरक्षण-के-बावजूद-असुरक्षित,
सशंक यात्रियों को विस्मित करता था

विस्मय की-वर्ड था
विस्मित कर देने का
विस्मित रह जाने का
प्यारा जादुई खेल हरदम चलता रहता
लम्बे एकान्तवास के बाद भीड़ में—अद्‌भुत
आर्ट फिल्म के बाद विज्ञापन का आर्ट—अद्‌भुत
सन्नाटे के बाद शोर और शोर के बाद सन्नाटा—अद्‌भुत
अपनी आखिरी कुर्सी से कभी भी उठकर वह अद्‌भुत की तलाश में निकल जाता
फिर अचानक आकर घर-घर जाकर अद्‌भुत के बारे में बताता

वह हिप्पी होकर चुका था
रजनीश भी पीकर छका था
अब उसकी उम्मीद क्रान्ति पर टिकी थी
अगर वह अद्‌भुत ढंग से हो जाती—अनायास, अचानक, पलक झपकते
—जस्ट अनप्रीडिक्टेबली
काश, बुद्ध की अधमुँदी आँखों से करुणा की एक चिंगारी निकलती
और जैसे तीन घंटे में फिल्म हो जाती है
या जैसे चालीस सेकेण्ड में भूकम्प हो जाता है
या जैसे निमिष-पलटते प्यार हो जाता है
ऐसे ही अन्यायी हालात बदल जाते

लेकिन क्रान्ति बेईमान थी
और अब तो पार्टी भी अपने पोस्टरों में आर्टिस्टिक परफेक्शन पर जोर दे रही थी
आध्यात्मिक एडजेस्टमेंट की लम्बी योजना समाज के सभी वर्गों ने पकड़ ली थी
तकनीक प्रवण दुधमुँहे कम्प्यूटर पर मोक्ष रच रहे थे

कुछ धुँधला-धुँधला-सा आकार ले रहा था
इधर से जिधर से
जहाँ देखो उधर से
और इसमें मार्क्स के मारों के लिए भी जगह थी
सपनों के निरीह शिकारों के लिए भी जगह थी
यह बहुआयामी धुँधला था
लेकिन कामरेड क्योंकि इसका कर्ता न था
इसलिए वह इसमें शामिल न था

ऐसे पराए धुँधलके में
आखिरी कामरेड की वह आखिरी रात थी
जब उसने निर्दय चुप की दीवार में सिर पटका,
निराशा के सख्त फर्श पर वीर्य से रेखाचित्र खींचे
और अमेरिका के अनन्त आकाश से
उसके बड़े भैया ने आवाज दी
यह उस महान धुँधलके की आवाज थी जो अपनेपन के रस में डूबी थी
स्नेहवत्सल, 'प्याली-प्याली' और घावों पर मरहम सी
और मुन्ना बाबा ने सारी लाल किताबें झुग्गियों में बच्चों को बाँट दीं
और आखिरी कामरेड की आखिरी सीट
अचानक-अनायास—अनप्रीडिक्टेबली खाली हो गई

गरीबों ने शोक किया—उनका मनोरंजन छिन गया था
पार्टी को दुख हुआ—मोटे और बेशर्त चन्दे का सोर्स डूबा
हाय, वह संग्रहणीय सिम्पेथाइजर गया
गया क्रान्ति के सीमान्त पर छोड़कर धूसर-धूसर रंग सिर्फ माँगते-माँगते-माँगते गरीबों के।

शोकनाच

(गुजरात में भूकम्प के बाद)

गुजरात में भूकम्प के दूसरे दिन
भूकम्प-जहाँ-आया नहीं–ऐसी खैर मनाती दिल्ली में
शाम हुए जब मैं दफ्तर से निकलकर भाग रहा था
मस्जिद में अजान हुई
और मैंने वहाँ के बच गए ईश्वर से कहा, कि ईश्वर मुझे भय दे

और संशय
कि मैं सावधान रहूँ
और भागूँ जब धरती हिले
जब धरती हिले मैं हिलती हुई धरती पर भागूँ

और भागता हुआ उन दो-दो हाथ जगहों में नाचूँ
जिन्हें मकान ने भागने के लिए छोड़ दिया था
कि मकान में रहनेवाला आदमी भागे
जब उसे मकान को छोड़कर भागने की जरूरत पड़े

इन दो-दो हाथ जगहों में मकान की नाचती हुई मस्त दीवारों के बीच
नाचता हुआ भागूँ

भूलने के लिए
कि जहाँ दीवारें मिलकर तिकोन बनाती थीं
कि जहाँ तिकोन पर तनकर हमारी छत
मकड़ी को जाले के लिए जगह देती थी
कि वहाँ मकड़ी के जाले के पीछे हमारा भटका हुआ सुख रहता था
उस जाले में उलझी हुई मकड़ी को घर में अकेला छोड़कर
उस जाले में उलझी हुई, घर में अकेली मकड़ी को
भूलने के लिए
नाचता हुआ भागूँ

और किसी को नहीं पुकारूँ
अटल बिहारी को भी नहीं, स्टीफेन हॉकिंग को भी नहीं
कि नीचे धरती, ऊपर आकाश और आकाश में और-और धरतियाँ
और जब वे सब हिलने लगें
तब शरण के लिए नहीं
मुक्त होने के लिए
ईश्वर से उधार लिये सपनों से; बूँद-बूँद संचित होती खुशी से;
कण-कण जमा होती हिम्मत से; पुर्जा-पुर्जा बनती
ज़िन्दगी की मशीन से; तार-तार जुड़ते मोह से
टप-टप टपककर टापू बनती ऊब से
निकलने के लिए भागूँ
और भागता हुआ नाचूँ

कि जैसे कण पदार्थ के शरीर में–
कि जैसे कण पदार्थ के शरीर को तोड़कर भागता हुआ नाचे;
कि जैसे ईंट दीवार में–
कि जैसे ईंट दीवार के शरीर को तोड़कर भागे
और भागती हुई नाचे
ऐसे मैं नाचते हुए घरों के शहर से निकलकर भागूँ

अन्तिम बार मरने के लिए नाचतीं ढेरों-ढेर साड़ियों के बीच
कुन्तलों-टनों खुश-खिलौनों के बीच
बदहवास नाचतीं इत्मीनानियों
और भौंचक बल खाती अलसताओं के बीच
चकित चक्कर काटती अबुद्धियों और
सुन्न-सिटपिटाई बुद्धियों
और अज्ञानी पलकें पटपटाते मनुष्यों और
सबकुछ पहले से जानते-समझते कुत्तों के बीच

और शोक की लीलाभूमि में खुलती काली गर्म दरार में
तिरते हुए तिनकों के बीच तिनके की तरह तिरता हुआ नाचूँ।

हत्यारे साधु जाएँ हत्या करने मेरा यह शाप लेकर

(गुजरात नरसंहार के बाद)

धर्माचार्यो
तुम्हारे दिन तो जा ही चुके थे बरसों पहले
लो, अब तुम्हारा धर्म भी गया
हत्या पर हत्या करके भी
अब तुम उसे नहीं लौटा सकते

तुम्हारी हवस की लपटों बीच
अकेला, असहाय, निहत्था खड़ा
भगवान के भी सहारे बिना
मैं तुम्हें शाप देता हूँ
कि जाओ, तुम्हारी क्षय हो, सतत
पाताल के सबसे गन्दे कुएँ में जाकर तुम गिरो
मारीच जैसी मरा था, ऐसी मौत तुम मरो
और लौट-लौटकर रावण के कुल में ही जनमो
अनन्तकाल तक
जब तक पूरी लंका, और पूरी अयोध्या न हो जाए नष्ट

कष्ट पाए तुम्हारी आत्मा
चौरासी की चौरासी लाख योनियों में
और भ्रष्ट करो
तुम हर योनि को अपने रावण-गुण से
करते रहो
जब तक कि धरती का हर चरिन्द, हर परिन्द, हर पेड़ और हर पानी रावण न हो जाए

तब
शायद तुम्हारे राक्षसी धर्म लौट आएँ
लिखी जाएँ तुम्हारे तप की गाथाएँ
तुम्हारे तेज की विरुदावलियाँ गाई जाएँ

धर्माचार्यो
अभी तो तुम हो बस पशुबल का अट्टहास
नरभक्षी अहंकार का विलास

(यह देखो, यह लाश
सुलग रही है, भुना हुआ है मांस
इसका भोग लगाओ
सन्तो, हम भूखे-नंगों की दुनिया
बस यही तुम्हें दे सकती है, खाओ)

राम से मत डरो महन्तो,
वे नहीं आएँगे अभी
हत्या के लिए वे व्याकुल नहीं रहते कभी
हत्या उनका मार्ग नहीं है
वे तो अभय देते हैं पापियों को भी
मुहलत–कि तुम करो पाप
जब तक किसी निर्बल का शाप
न फैल जाए पूरे ब्रह्मांड में प्रलय-प्रस्ताव की तरह

साधुओ,
तब तक हो तुम स्वतन्त्र
और मर्त्यलोक का यह जनतन्त्र
तुम्हारा है
लिप्सा के
ये सारे शक्तिशाली दास
तुम्हारे हैं
उथले धन के पाले

ये सारे बदमाश
तुम्हारे हैं
भगवान की दुत्कारी
इस अनपढ़ जनता के
अन्धे लूले विश्वास
तुम्हारे हैं

तुम्हारा क्या नहीं है, सिवा राम के

ओ लंका के धर्मरक्षको,
सारे मृत्यु मन्त्र
तुम्हारे पास पड़े हैं
यम के सारे दूत
श्रद्धावान से सब हत्यारे
ये मृत्युपूजक
मानस पूत तुम्हारे
तैयार खड़े हैं

तो जब तक आएँ राम
बजे हत्या का डंका
खून की प्यासी
रह न जाए
सोने की लंका
तिलक रक्त का चढ़ा
पहनकर असुरों का उत्साह
है मेरा शाप तुम्हें
तुम जाओ ताकतवर की राह।

संघे शक्ति

लो आ गए
अतीत की भूलों को सुधारनेवाले

ये तुम्हारी स्मृतियों में संशोधन करेंगे
तुम्हारे अनुभवों को नयी तरतीब देंगे
और दुर्गनुमा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी में
तुम्हें बताएँगे
कि हत्या करने के लिए तुम्हें
कितने आत्मानुशासन की ज़रूरत है
कि रक्त से निर्लिप्त रहने के लिए
तुम्हें कितनी आत्मिक शान्ति चाहिए

ये सुबह-सवेरे तुम्हारे पार्कों में लाठियाँ भाँजेंगे
और देशप्रेम के मुर्दा गीत गाकर
तुम्हारे बच्चों को डराएँगे
और तुम्हारी हरी घास और तुम्हारे गुलाबी फूलों को
अपनी टाँगों के घने काले बालों से
नीचा दिखाएँगे

एक बड़ा अनगढ़ खाकी निक्कर पहनकर
ये नुक्कड़ पर खड़े हो जाएँगे
और डायना हेडन के गाउन
और तुम्हारी बेटी की जीन्स पर फब्तियाँ कसेंगे
इस तरह ये तुम्हें सिखाएँगे
कि भद्र होने के लिए कितना भद्दा होना जरूरी है।

वे हर पुर्जे को कसेंगे
तुम्हारी कल्पना को भी
वे संशय के लिए जगह नहीं छोड़ेंगे
क्योंकि स्वस्थ शरीर में वह शुभ नहीं होता
वे तुमसे हर कीमत पर स्वास्थ्य माँगेंगे
और स्नायविक सन्तुलन
जो एटम बमों को ढोने के लिए जरूरी है।
वे शहरों और सड़कों के नाम बदलेंगे
और मूर्तियों के चेहरे
और बच्चों की किताबों में
सवालों की जगह जवाब लिख देंगे
ताकि जिज्ञासा उनकी सांस्कृतिक शुद्धता को विकृत न करे
क्योंकि वह तुम्हें
दूसरे के प्रेम का लोभी बना देती है

इस तरह तुम सीखोगे
कि शुद्ध रहने के लिए घृणा कितनी अनिवार्य है

वे अश्लीलता का विरोध करेंगे
और स्त्री को पुरुष से और पुरुष से स्त्री को छीनकर
संस्थाओं के हवाले कर देंगे
ताकि प्रकृति के रहस्यों की पवित्रता
और एक सफल बलात्कार के लिए पर्याप्त उत्तेजना
बची रहे

वे सृष्टि में पौरुष की स्थापना करेंगे
ताकि प्रलय के उस अन्तिम दिन
एक भी हाथ ऐसा न हो
जो शस्त्र उठाने में संकोच करे।

कविता के अँधेरे वक्तों की बानगी

टी.वी. न देखनेवालों के सुगठ बच्चे
जिन्हें कोई प्रदूषण नहीं व्यापता
क्रिकेट भी नहीं
केबल के महानगर में वे बॉलीबाल खेलते हुए खुश थे
वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हरे गाँवों से दिल्ली आए हुए
या दिल्ली के साए में बैठे-बैठे दिल्ली हो गए हुए

वे–फिर भी जिन्होंने रखा एक चबूतरा
और चबूतरे पर नीम का पेड़
जो पेड़ की तरह नहीं झंडे की तरह फहराता था

टी.वी. न देखनेवालों के टी.वी. न देखनेवाले सुगठ बच्चे
जो कागजी मध्यवर्ग के कपड़ों में नहीं समाते थे
जो देह में बल संचित करते थे
        और बैंक में डी.डी.ए. का मुआवजा

वे–जो दुकानों पर नौकरी नहीं करते थे
न ही नई दिल्ली के चिकने दफ तर जिन्हें सुहाते थे
आर्मी और पुलिस की वर्दी ही जिन्हें शोभती थी
और शाखा की खाकी निक्कर जिनकी कैजुअल ड्रेस थी

अपनी बहनों पर कड़ी नजर रखनेवाले
माँ की गाली नहीं सुन सकनेवाले
वे–जीन्स के कट्टर दुश्मन
और विवाह की अमरता के पुजारी

टी.वी. नहीं देखकर वे अपने हिन्दू होने का कर्ज चुका रहे थे

2

हमारे मुहल्ले के पासवाली बस्ती में
एक दिन उन्होंने कसम खाई थी
कि सबसे पहले धर्म
        उसके बाद राष्ट्र
                उसके बाद सेहत
                        और उसके बाद कुछ नहीं

उन्होंने कहा था
कि प्रवीण भाई की सों
यह देश हिन्दुओं का है
और हम हिन्दुओं की तरह यहाँ रहेंगे

3

और इस कविता के चलते-चलते ही
हुआ यूँ कि मोदी फिर गुजरातपति बना
और देश-भर के सेकुलर मीडिया ने पहले सफे पर 'विक्ट्री' लिखा
और यह कविता अपने छन्द से च्युत होती चली गई
भगवा ब्रिगेड का वह योद्धा जिसे मैं भाषा के कोड़े से पीटने चला था
मेरे हाथ से फिसलकर हवा में घुल गया
और अब जब धर्मनिरपेक्षता बैक मार रही है
उदार हिन्दुओं को लगने लगा है कि कुछ न होकर भी वे हिन्दू हैं
और श्रेष्ठ आलोचकगण कहते हैं
कि हिन्दी कविता के लिए इससे बुरा वक्त कभी न आया
नमूने के तौर पर यह कविता प्रस्तुत है।

हार्डवेयर की दुकान

न धूल की परवाह है
न उदासी से शिकायत है
न ही कोई आकर कहता है
कि काउंटर पर हसीन लड़की भी नहीं !

यह हमारी हार्डवेयर की दुकान है
यहाँ हम चकरियाँ घिर्रियाँ तसले फावड़े उथले गहरे चौड़े लोहे
प्लास्टिक रबर और अल्मूनियम बेचते हैं
हमारे पास रस्सियाँ जंजीरें और ताले भी हैं
हैंडपम्प के पाइप हत्थियाँ पानी खींचने की मोटरें
और पम्पिंग सेट के पुर्जे भी हम रखते हैं
सुन्दर चिकना और जिसे आप कहते हैं
अनन्त के मन में बस जानेवाली कौंध
ऐसा कुछ तो हमारे पास नहीं है

हरियाली भी नहीं है

लाल, पीला, गुलाबी और सुनहरा भी कुछ नहीं
बस यही काला कसैला मटैला धूलिया-सा है
तितलियाँ इस पर नहीं बैठतीं
न ही यहाँ खड़े होकर शाश्वत के छन्द सुन पड़ते

कोई गन्ध भी यहाँ नहीं है
हवा बस उतनी ही जितनी अपनी इच्छा से रह जाए
किसी खास तरतीब का खयाल भी कभी नहीं आया
बस चल रहा है

बने-ठने और सुन्दर ग्राहक हमारे यहाँ अकसर नहीं आते
कोई आता भी है तो बाहर से ही चला जाता है
जैसे बस यही पूछने आया हो कि इस इतने सुन्दर बाजार में
बदनुमा तुम, हो किसलिए ! यह लम्बा-सा टेढ़ा सा अजीब-सा
यहाँ क्या टाँग रखा है !

यह लोहे की तार है
यह कठोर है चुभती है और खुल जाए तो आसानी से काबू में नहीं आती
आपको पता होगा लोहा अपना आसन मुश्किल से ही छोड़ता है
हमारी ही तरह

सारे बाजार की उदासी
हम अपनी दुकान में ले आए हैं
दर्जी की, सुनार की, हलवाई की, ब्यूटीशियन की, बजाज की
सबके पिछवाड़ों की खामोशियाँ
हमारे यहाँ आकर आराम से रह लेती हैं
सबकी बेपरवाहियों को हम यहाँ बसा लेते हैं

इन टेढ़े-मेढ़े बदरंग डिब्बों में
इन फटी-खिंची बेडौल थैलियों में
और भी जाने क्या-क्या रखा है बहुत कुछ है
कभी फुर्सत से आइएगा तो दिखाएँगे।

गर्मियों की अगवानी

गर्मियाँ आ रही हैं

सूरज फिर दफ तर के मालिक की तरह
सिर पर आ बैठेगा
और दिन
नौकर की यन्त्रणा की तरह
लम्बे और लम्बे होते चले जाएँगे

रिक्शेवाले खून थूकेंगे और भगवान को
        याद करेंगे
और पढ़े-लिखे एक बार फिर कहेंगे कि
        ओजोन की छत में छेद हो गया है

शहर में पानी की किल्लत हो जाएगी
कूड़े के ढेरों से भाप उठेगी
और सारी बिजली वे सोख लेंगे
जिनके हित में विज्ञान ने सबसे ज़्यादा
        काम किया है

हर चीज़ पर्दे से बाहर आ जाएगी
हर चीज नंगी खड़ी सामने दिखेगी
ईर्ष्या और नफरत और हवस और गर्मी से
        सुलगती आँखें
हर कहीं पड़ेंगी। चमकती धूप में कंकड़-कंकड़
        साफ़ दिखेगा

कोहरे में मुँह छिपाकर चुप हो रहने का सुख
अब न किसी धातु को मिलेगा न मिट्टी को

पिघले तारकोल की सड़क पर
चप्पलें चिपकेंगी
और तलुओं को ठोंकेंगी
        कि पैदल चलनेवाले तुझ पर थू
झुग्गियों की प्लास्टिक दुनिया पिघलकर
        फिर बह जाएगी
फिर शास्त्री भवन का ध्यान सिंह उनसे
        पूछेगा—अब आया मजा, दिल्ली को
        खाला का घर समझा है !

घनी पुरानी बस्तियों के बाशिन्दे
फिर महीनों-महीनों
एक सम्पूर्ण सम्भोग को तरस जाएँगे
छतों के मेले में अकेले लेटे हुए वे करवटें
        बदलेंगे और रेती फाँकेंगे

पंखे आग मथेंगे

किराएदार देशवासी
मालिक मकान की आँख बचाकर
छह-छह बार नहाएँगे
और भीगे बिस्तर पर लेट
पहाड़े गाएँगे

हाँ, लड़कियों को यह मौसम शायद खूब
        रुचे
खड़ी धूप में वे हवा के हल्के गाने गाएँगी
और आग के समन्दर में उघड़े बदन तैर
        जाएँगी

बाक़ी, ऐ सर्द लोहे के बन्द आततायी, इन
गर्मियों में देखना

ये गर्मियाँ शायद उन्हें भी भाएँगी
जिनके पास इस साल सर्दियों में
न छत थी न कम्बल
और सरकार ने स्कूलों की इमारतें इसलिए
बन्द रखीं
कि वे जगह-जगह थूकेंगे
अपना जख़्मी गू गुलाबों पर पोत देंगे
पर वे गर्मियों में भी मरेंगे जैसे सर्दियों में मरे थे
इसीलिए इनके बारे में सोचना
अब मैं धीरे-धीरे बन्द ही कर रहा हूँ
इन्हीं को देखते रहें
तो आप हर मौसम को गाली दें !

हिन्दी पार्क में एक प्रेमिल फटकार

माफ कीजिए, निबन्ध में 'कमीनगी' शब्द नहीं चलेगा
निबन्ध एक औपचारिक विधा है

देखिए, हमारी उम्र भी हिन्दी ही में बीती है
हमने तो कभी जरूरत महसूस न की
कि सम्प्रेषण के लिए
गली में खड़े हो गालियाँ दें

जीवन तो भई जीवन, साहित्य तो भई साहित्य
क्यों मेघवर्णी जी !

साहित्य में भी आप गन्दगी ले आएँगे
तो फिर जनता को राह क्या दिखाएँगे
जीवन तो भई जीवन, साहित्य तो भई साहित्य
अलंकारों की जगह आप अपशब्द सजाएँगे
और फिर साहित्येतिहास में नाम भी ढूँढ़ने जाएँगे
यह तो थोड़ा ज़्यादा है,
क्यों विजयकर्णी जी !
फिर आप लेखक कहाँ रह जाएँगे
जनता न हो जाएँगे
लेखक तो भई लेखक, जनता तो भई जनता
जनता गालियाँ दे, क्षम्य है
राष्ट्रभाषा में वह अनपढ़ है
आप तो शिक्षित हैं, सभ्य हैं, सुदर्शन हैं
आपको क्या हुआ है,
बताइए, देश के नेताओं के लिए

आपको कोई और शब्द न सूझा
उन मरजाणों, नासपीटों, खसमखाणों को
आप दुष्ट कहिए, असुर कहिए
हम क्या उनसे खुश हैं
पर उनके लिए अपनी जबान तो नहीं गँदिया सकते ना
जबान को ही तो हमें बचाना है
उसकी शुचिता को अगले लोकों ले जाना है
लताजी, जरा समझाइए तो इन्हें !

अच्छा, आप थोड़ा अपने बैकग्राउंड के बारे में बताइए
इस विकृति का मूल निश्चय ही कहीं और है, ठीक है
लेकिन अब तो जीवन में आशावाद का जोर है
सुख हैं, सुविधाएँ हैं
चार लोग जानते हैं–पहचानते हैं
तब क्यों उस बीते को दोहराते हैं
बेवजह अशगुन बुलाते हैं

आप ऐसा करिए
यूँ मत बिफरिए
इतिहास पर लिखिए
क्यों, सिंह सा'ब
आपने इतिहास की किसी किताब में पढ़ा
कि किसी राजा ने कभी गाली दी !
या फिर भविष्य के बारे में लिखिए–
एक गालीविहीन भविष्य के बारे में
जब कोई भूखा न होगा, पीड़ित न होगा
उदास न होगा, और...बदजबान न होगा
गलियाँ आर्टगैलरी होंगी
घर अकादमियों जैसे
और लोग होंगे ऐसे कि होंठ खुलें तो फूल झड़ें...झर-झर
लोगों को सपना दीजिए
पाश ने क्या कहा था, याद कीजिए

सपने को मरने मत दीजिए
कल हमारा है, याद रखिए
लेकिन तभी जब आज संयम न खो बैठेंगे
मैंने कुछ गलत कहा, मधुसूदन जी !

ठीक है, जिद पड़ गई है
तो वर्तमान पर भी लिखिए
लेकिन तब अपने अग्रजों से कुछ सीखिए
अमूर्त दिखिए
जान मेरी,
इस काली घड़ी में
जब तुक नहीं, छन्द नहीं
और कुछ भी बन्द नहीं
घर-बार नहीं, संस्कार नहीं
किसी पर किसी का अधिकार नहीं
बाप बेटियों के गाल चूमते हैं
गली-गली गुंडे घूमते हैं
तब अमूर्त में आइए
लक्षणा में गाइए
मीठी छुरी धाँसिए
और मुस्कुराते जाइए
परिस्थितियों से ऊपर कौन हुआ है
परिस्थितियाँ ही मनस्थितियाँ बनाती हैं, मार्क्स ने कहा था
तो प्रतिकार कीजिए, अस्वीकार कीजिए
पर इस तरह कि प्रिंटिंग में दिक्कत न हो
शब्द ब्रह्म है, क्यों भट्टजी
उसका सम्मान कीजिए,
अब जाइए, दोबारा लिखकर लाइए

और हाँ, मंडावलीवाला वो घर बदल दीजिए
इधर किसी सोसायटी में आइए
खुद भी कुछ सीखिए और बच्चों को भी सिखाइए।

कवि हे !

इस उम्र में भी आप कविताएँ नहीं लिखते
जानकर अफसोस हुआ

तीन बदतमीज बच्चे होंगे आपके
एक अदद बीमार बीबी
और ढेर सारे रिश्तेदार
फिर भी ओ जवाबदेह जिम्मेदार
तुम्हें कविता नहीं सूझती

दुख तो है आपके भीतर आपके चेहरे पर लिखा है
आपकी पिंडलियों में दर्द भी है
और घुटनों में जकड़न भी
तलुओं में जलन
और तुम्हारी आँखें कह रही हैं कि तुम हो मानसिक बीमार
फिर भी ऐ सपनों के गुनहगार

कविता नहीं सूझती तुम्हें

हमने सुना है बचपन में आप अच्छे कवि होते थे
बालभारती में आपके छन्द छपे भी थे
जवानी के चर्चे तो खैर गली-गली में हैं
गुप्ता की लद्धड़ बेटी को कविता के साँचे में ढाल
तुम्हीं ने सक्रिय किया था
जो आज अच्छी लेखिका बन चुकी है
और किसी भी बुझे हुए के लिए अचूक प्रेरणा
लेकिन तुम्हारे ऊपर वह भी कारगर नहीं हो पाती !

सुनो,
वहाँ इतनी गहरी डुबकी लगाने से पहले
क्या तुम्हें किसी ने रोका नहीं था ?
वहाँ हजार पर्तों के नीचे उस नीमअँधेरे में
जहाँ बताते हैं कि सवालों के आक्टोपस
आत्मा के किसी भी सुरक्षा-कवच को साबुत नहीं छोड़ते
तुम गर्दन झुकाए, रात-रात भर कैसे बैठे रहते हो
तुम्हारी दाढ़ी पर काई चिपकी रहती है
सुबह जब तुम उभरते हो
उसे भी तुम नहीं पोंछते
बोलो तो
यह आत्मविश्वास है या आत्मविस्मरण

कविता को हमने तुम्हारी 'हाँ' जाना था
लेकिन कविता न लिखने को तुम्हारी ना मानने की इच्छा नहीं होती
मित्र,
दिल्ली की संसद और शारजाह का क्रिकेट मैदान
कितने भी ताक़तवार हों,
तुम्हारी हाँ और ना से बड़े नहीं हैं

इसलिए गली, अगर वह टेलीविजन की दर्शक-दीर्घा बन चुकी है तो भी
अब भी तुम्हारी है
फैशन से बचना मुश्किल है, बेशक
हालाँकि यह विज्ञान और धर्म का क्षेत्र है
फिर भी मैं तुमसे कहना चाहता हूँ
कि अगर चाहो तो
एक ही स्वाद की एक लाख पुड़िया बाँधकर एक ही दाम
पर एक ही ढंग से बेचनेवाले इस कारखाने में
तुम अपनी खटास के साथ बने रह सकते हो

तुम अपनी खटास के साथ बने रह सकते हो

बशर्ते तुम्हें कविता सूझती हो

अतः हे प्राणी
बेचैनी के मन्त्रपूत घेरे में अभी रहो
कुछ कविताएँ लिखो
अभी लिखो
दस साल बाद फिर कहूँगा
तो शायद तुम्हें लगे और मुझे भी
कि शायद बहलाने के लिए कह रहा हूँ।

कि जैसे वह शुरू से हो

देश भी लोगों की ही तरह काम करते हैं
यह मुझे मालूम नहीं था
राष्ट्राध्यक्षों से मेरी रूह काँपती थी
सेनाएँ कुपित देवताओं सी लगती थीं
और पुलिस यमदूत-सी

देश का रहस्य तपे लोहे की तरह
मेरे गिर्द खड़ा था
यह अपने देश में होने का मेरा तरीका था
जो बहुत आम होने के नाते मेरे पास बचा था

लेकिन देश भी लोगों की ही तरह काम करते हैं
ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध-कुंठा और प्रतिशोध के साथ
यह जब मुझे मालूम हुआ
तो राजनीति को समझना
मेरे लिए आसान हो गया

जिससे भयभीत, मैं समाज में सबसे पीछे रहता था

यह कितना आसान था–
अनुमान लगाना और निःसंकोच बता देना
कि कौन
कब अपनी निहायत निजी नीचता की एक-इकाई को
सार्वजनिक के एक लाख से गुणा करके
जातीय महानता का कोई विशाल गुणनफल पेश कर देगा
बाकायदा, लोहे की मुहर, टैंक और झंडे के साथ

पर गणित के इस पहलू से मैं कमजोर था
अतः व्यवसाय में एक चोर था
डरता, छिपता, ठिठकता, बहसों से बचता–अनागरिक

हत्या की इच्छा को वैध साबित करने को
बस एक झंडा दरकार था
यह न समझ पाने के कारण मैं गुनहगार था
देश में रहते हुए भी देशहीन,
महेन्द्र कपूर के ओजस्वी आह्वान पर भी गमगीन–
    मैं अबोध, भूमंडल पर फैली अथाह इनसानियत के
    उल्लास को पुकारता था

लेकिन देश भी लोगों की तरह काम करते हैं
पड़ौसियों पर क्रुद्ध और अपनी आनुवंशिकी में शुद्ध होते हुए
सपनों की हवा में ठोस के भाले चुभोते हुए
जब यह मैंने जाना
तो ग्रह-भर पर फैलते अपने तरल को समेट
नागरिक होना मुझे सरल हो गया
जो वोट दे सकता था
वीजा ले सकता था
किसी मकसद पर मर सकता था
और हत्या कर सकता था

उसके होने के हजारों कारण थे, लाखों प्रमाण
क्योंकि, वह जानता था कि रहस्य कहीं नहीं, क्योंकि
देश भी लोगों की ही तरह काम करते हैं; और यह भी
    कि हमले क्यों होते हैं
    कि युद्ध का तर्क क्या है
    और लोग बिना वजह ही क्यों मरते हैं,

पहले वह नहीं था,
फिर वह हो गया
जैसे टैंक, जैसे लोहे की मुहर, या जैसे झंडा
और कविताओं में देवताओं की तरह
उसका जिक्र होने लगा
बिल्कुल यूँ कि जैसे वह शुरू से हो।

उसकी हँसी

एक मर्द हँसा
हँसा वह छत पर खड़ा होकर
छाती से बनियान हटाकर

फिर उसने एक टाँग निकाली
और उसे मुंडेर पर रखकर फिर हँसा
हँसा एक मर्द
मुट्ठियों से जाँघें ठोंकते हुए एक मर्द हँसा

उसने हवा खींची
गाल फुलाए और
आँखों से दूर तक देखा
फिर हँसा
हँसा वह मर्द
मुट्ठियाँ भींचकर उसने कुछ कहा
और फिर हँसा
सूरज डूब रहा था धरती उदास थी।

मर्द मजलिस

मूँछ ने कहा
अबे देखता है क्या
दिखा दूँ क्या

जवाबी मूँछ बोली
देख लेंगे, तुझे भी देख लेंगे
न कर जल्दी जरा

महफिल में सीने के बाल भी थे
लगे कहने
सुनो साथी
जनाना जंग में रखा है क्या
जबाँ रोको
दिखाओ बल
यहाँ देखो
खड़ी दीवार-सा, चट्टान-सा सीना
डरो इससे

टाँगों के अयाल भी थे
चीखे
हम नहीं दीखे
न उठाओ हाथ
न चलाओ जबान
नीति से काम लो
मर्दों सी कहो, शेरों सी चलो

रफ तार तेज थी हवा गर्म थी
कोई किसी को नाम से नहीं जानता था
सब चुप बैठे
स्वदेह भाषा का अन्तरंग विमर्श सुन रहे थे।

काश मैं होता

स्त्री, तुम हो
तुम्हें मैं देखता हूँ
और जितना वास्तव में हूँ
उससे ठीक आधा
अपने ना-होने में गड़ जाता हूँ मुथरी कील-सा

मैं जब पुरुष हूँ
तब नहीं तुम-सा
औ' जब नहीं
तब भी नहीं हूँ
गीत-सा, संगीत-सा, भयभीत-सा तुम-सा

मैं हूँ नहीं
मैं काश होता
आकाश होता
धरती की तरह
पानी में पानी सा
और हवा में गन्ध जैसा
पर मैं नहीं हूँ
मैं काश होता

मैं अँधेरे की तरह होता
या रोशनी-सा रोशनी में
अनपाया, अनोखा
जिस तरह हो तुम

अपने होने की भँवर में गुम

या तुम्हारी ही तरह सम्पन्न होता
ढेर सारी वेदना, संवेदना लेकर निकलता
सोना मेरे अंगों में पिघलता
फूल बनता
ढेर सारे रंग मुझको याद रहते

मौत के सारे मुखौटे मेरी गुल्लक में धरे होते
जब जी चाहता जो भी लगाकर ज़िन्दगी की जिस
गली से भी निडर होकर निकल जाता

मगर मैं एक चेहरा, एक लहजा, एक आदत,
एक-से पन में
सतत् घटता हुआ
तुम्हारी धार से कटता हुआ, बंजर किनारा हूँ
तुम्हारा हूँ, मगर मैं तुम नहीं हूँ

मैं काश होता

देह में दो-चार खाने और होते
परदा मांस का कुछ और पाटलदार होता
करवटें लेता खुदा जिसमें
यहाँ से झाँकता और फिर वहाँ से।

सुबह

हम सब एक खड़ी चट्टान के सामने
अवसन्न खड़े थे
और पीछे हमारे एक ऊँचे दरख्त की डाल से
एक बिल्ली गुर्रा रही थी
हम एक दिन के सामने थे जो हमारा नहीं था

और एक शहर में
जो भी किसी और का था
फिर बीच-बीच में यह सवाल भी
कि अपना आखिर क्या होता है
वह जो हमें जन्मतः दे दिया जाता है
या वह जो हम अन्ततः कमाते हैं
और हम जवाब के लिए भी
दूर जाने को तैयार न थे

हम खड़े-खड़े सोचते

कि एक हजार लोग कहीं से आते
और एक अन्धविश्वास उपहार में हमें दे जाते

फिर अचानक एक कुत्ता भौंका
और चट्टान से पत्थर लुढ़कने लगे
यह भी एक जवाब था
कि अगर कोई जवाब न मिले
तो जान बचाने के लिए ही शुरू करो
और हम फक्क चेहरों, फटी आँखों और काँपते क़दमों से
घाटी में छितराने लगे

बरसों से रोज इसी तरह होता है
कि थकान, बेहोशी और नींद
हमारे भय की पिछली इबारत को पोंछ देती हैं
और रोज हम एक और आदेश के लिए
यहाँ आ खड़े होते हैं।

मेरे दोस्त

हुल्लड़बाज लड़के-लड़कियों से भरे एक मकान के बाहर खड़ा एक बूढ़ा संतरी,
एक कुत्ता जो अपने मालिक से बिछुड़ गया है और
अब हर किसी के पैर सूँघता फिर रहा है
एक पानफरोश जो पान लपेटते-लपेटते थक गया है और
अब किसी से बात करना चाहता है,
उस बड़े वाणिज्यिक भवन का एक अदना-सा चपरासी
जो अपने साहब के लिए सिगरेट लेने निकला है
एक पुस्तक विक्रेता जिसे बहुत सारे लेखकों के नाम
मालूम हैं लेकिन जिसके ज्ञान का कोई उपयोग नहीं हो पाता,
दूसरों के दुःख से लबालब भरा हुआ एक सज्जन व्यक्ति जो अकेला पड़ गया है,
एक बड़ा आदमी जो वास्तव में छोटा होना चाहता था, और अब बेचैन रहता है,
एक छोटा बच्चा जिसे लक्ष्यहीन आवेग अपने वश में कर लेते हैं,
और एक लड़की जो सड़क के उस पार खड़ी रहती है,
ये सब मेरे दोस्त हैं
ये सब शहर में हैं
तो मुझे अपने ऊपर यकीन सा बना रहता है

प्रेम कविता

एक आराम कुर्सी-भर होता अगर मैं
तो क्यूँ निकाल दिया जाता राजभवन से
क्यूँ कहते मेरे शक्तिशाली पिता–
कि 'नहीं वह मेरा पुत्र नहीं
वह तो है किसी और ही परम्परा का फल'

फल अगर मैं होता मीठा
तो खा न लेते मुझे सामन्त,
मेरी कड़वाहट बचा लाई मुझे,
कसैलापन मेरा
मेरी असुन्दरता
हाथ-पाँव मेरे टेढ़े
अष्टावक्र, मैं कुरूप
यह सब कुछ लेकर आ गया मैं

सोचता ज्ञान की तपन से सुर्ख तुम्हारी आँखें
माथे पर सिलवटें चिन्तन की
वक्र होंठ, खुला मुँह विस्मय से
डग भरती निर्बन्ध, कहीं तुम आन मिलोगी

विचित्र होगी वह प्रेम कहानी भी
दुनिया के सबसे कुरूप पुरुष
और विरूप स्त्री की
और हम एक रूप की सर्जना करेंगे।

किसे सम्बोधित हो तुम !

पता लगाओ किस दिशा में है तुम्हारा मुँह !
कहाँ खड़े हो तुम !
और कहाँ तुम्हारा आराध्य !

लौटोगे जब तुम अपने में
तो बीत चुकी होगी सदी
डरो, कि तुम सदी की साँझ में
अवसन्न हो
चौंको, कि सदी आ रही है, संशय में
क्या इतना काफी नहीं है

कि एक पूरा युग उहापोह में ही बीत गया
सारी लड़ाई लड़ भी ली गई
और तुम इन्तजार में ही बैठे रहे आदेश के
सोचो, क्या इतना काफी नहीं है
इतना धैर्य ! इतना तप !!
अब मरने या मार डालने के लिए ?

किसे सम्बोधित हो तुम !
पता लगाओ किस दिशा में है तुम्हारा मुँह !
कहाँ खड़े हो तुम !
और फिर चुन लो अपना ध्येय
और चल पड़ो !

शाप

मुझे हँसी और खुशी के कोल्हू में जोतकर बैठा वह मुस्कुराता है खुशी का देवता
हँस-हँसकर कहता है कि हिलोरें खाते सुख-संसार में जा
अब तुझे आँसुओं और टीस के बारे में एक भी पंक्ति याद नहीं आएगी
दुखवाले जाते रहेंगे तेरी तरफ एक नजर भी डाले बगैर
बिना देखे कि किनारे के उथले पानी में तूने कितनी कागजी नावें तैराई हैं
कितने तिलचट्टों को मल्लाह बनाकर उतारा है तूने अपने डबरे में
चीखें मारती खुशियाँ तुम्हें बहरा कर देंगी
किसी की भी पुकार तुम नहीं सुन पाओगे कोई भी रुदन तुम तक नहीं पहुँचेगा
धीरे-धीरे गलकर तुम मिल जाओगे बहते पानी में खो जाओगे गाते हुए खुशियों के गीत।

गली की बात

बात गली में कही गई
और चेतना के हाशिए पर
मधुमक्खी की तरह मँडराकर
जेहन में छत्ता बनाकर बैठ गई

गली की बात
खेतों से, मेहनत के अड्डों से और ठलुवों के ठेकों पर
पथरीली तहों में जमते वक्त से
घूम-फिरकर गली में आई
और गली में
चेतना के हाशिए पर
मधुमक्खी की तरह मँडराकर
जेहन में छत्ता बनाकर बैठ गई

जिनकी कुंठा ने मरोड़ खाकर
दर-दर भटकने से बेहतर
सबकुछ जान लेने का मुखौटा ओढ़ आराम फ़रमाया
उन ज्ञेय ज्ञान के ज्ञाताओं तक
नहीं ही पहुँचनी थी

गली की बात
उनकी थी जिनके पास सोचने के लिए प्रयोगशाला में बैठने का अवसर न था

या कहें कि
जिनकी ज़िन्दगी खुद एक प्रयोगशाला थी

कि जिसमें इच्छाओं के ताप पर
जीव-द्रव्य छनछनाता था
और शास्त्र के वजन पर दादी से नुस्खे लिखवाता था

जरूरत न थी
अलभ्य ज्ञान के सागर की सतह पर
बुलबुलों की तरह फूटते हर-फ़न-मौला पत्रकारों की
ज़रूरत न थी अपने वाग्जाल में उलझे
सरकारी वजीफे के हरकारों की
गली की बात को जरूरत थी
बस एक साधनच्युत आदमी की।

स्टिल लाइफ

बिस्तर अकेला लेटा छत देखता था
तकिया दीवार से पीठ लगाए गुमसुम बैठा था
कपड़े की बुनावट में बिंधा एक बड़ा फूल
अब झरने की उम्मीद छोड़ शायद मर गया था
कुर्सी खुद कुर्सी पर बैठी गाल पर हाथ धरे कुछ सोच रही थी
शायद फूल के बारे में
किताब अकेली बैठी वही पन्ना बार-बार पढ़ रही थी
इस तरह कि किसी को पता न चले
घड़ी अपनी हर टिक पर जरा-सा सिहरकर रह जाती थी
ताकि स्टेप्लर को खलल न हो
जो पलक झपकाए बिना अपने दाँत गिन रहा था
कैलेंडर पर पिछली कोई तारीख
जबड़ा भींचे बैठी थी
उसके होंठों पर एक आवारा छिपकली का पंजा आकर अटक गया था
टेबुल लैम्प अपनी रोशनी से स्तब्ध था
और इन्तजार कर रहा था
कि छत के कोने में थमी मकड़ी
अगर जरा हिले
तो वह आवाज देकर गली में से किसी को बुलाए।

वयस्-प्राप्ति

न कभी कुत्तों को पीटा न ब्लेड से चींटियों को काटा
न कभी बूढ़ों की छड़ियाँ खींचीं
गरज कि पैदा होकर भी गर्भ में ही बने रहे

और जब रोशनी में आए तो हर तरफ रहस्य था
हर तरफ चार कदम के बाद रोशनी की एक सफेद दीवार खड़ी थी
हर चीज अपने कद से बड़ी दिखती थी
हर चीज में भगवान का वास था
खतरनाक दिखनेवाले लोग भी, बस अपनी मुस्कान से,
दिल के कागज पर, अपना निशान छोड़ जाते थे
गठा हुआ गोश्त, गोल चेहरा, और नमूना रखकर काटे गए होंठ
हर शक की नोक चिकनी कर देते थे

दुनिया का सारा तमाशा प्राकृतिक लगता था
धरती पर कुछ भी ऐसा नहीं था जिसे लोगों ने बाद में बनाया हो
घरों और गलियों के नक्शे तक ईश्वर की एटलस से मिलते थे

आँखों पर आँसुओं की एक झालर हमेशा रहती थी
जिसके पार सबकुछ सुच्चे पानी की तरह निर्मल था
मुस्कुराने वाले लोग आते-जाते कह दिया करते थे
कि तुम तो अभी बच्चे हो
और हम खुश हो जाते थे। हल्के से हँस देते थे

हुकूमतों से हमारा कोई सीधा रिश्ता न था
हम ही ने सबसे पहले माना कि राजा ईश्वर का नुमाइंदा होता है

हर आततायी को हमने सदिच्छा का लाभ दिया
हर महान को यह कहकर आसमान सर करने दिया
कि तुम्हें ही कुदरत ने इसके लिए बनाया है

और यह जाने कब तक चलता
हो सकता है कृतज्ञ होकर एक दिन हम आत्महत्या कर लेते
लेकिन उस दिन मैंने देखा
कि कुछ लोगों ने
एक आदमी को पत्थर पर लिटाकर
हथौड़े से पहले उसका सिर फोड़ा
फिर उसके एक-एक अंग को छितराने लगे

अन्त में वह चिन्दी-चिन्दी होकर दीवारों पर,
और उनके हाथों और चेहरों पर चिपक गया
तब मैंने अपने कमरे का दरवाजा खोला
और नीली रोशनी में देवदूतों की तरह नंगे लेटे अपने साथियों को जगाया
और कहा कि यहाँ ऐसा होता है
कि हम सही जगह पर नहीं हैं
और कि रहने का यह तरीका तो बिल्कुल सही नहीं है

और बस दो-चार मिनटों में ही
हम पक्के पुरुष हो गए
हमारे शरीर पर बाल उग आए
चेहरे चौकोर हो गए
और हम छिटककर दूर-दूर जा बैठे।

यह गलत था
यह दरअसल और भी ग़लत था
लेकिन जन्म लेने के बाद इससे बचना असम्भव था।

आसमान में ईश्वर

मैंने पृथ्वी के छह चक्कर लगाए
और जब थकान मेरे पोर-पोर में दही की तरह
जमने लगी
तब मैंने आसमान का रुख किया

कहते हैं अकेला आदमी सिर्फ अपने बारे में
सोचता है
लेकिन आसमान की सातवीं सीढ़ी पर बैठकर मैंने
सारी पृथ्वी के बारे में सोचा
और देखा कि
वहाँ कोई भी इतना कम अकेला नहीं था
कि दूसरों के बारे में सोच सके।
बस, यहीं तक सोचकर मैं उठ गया
इसके बाद ईश्वर अपने आपको दोहरा रहा था

बार-बार, हर बार
एक दरवाजे से बाहर जाता
दूसरे से भीतर
और हर बार उसका चेहरा वैसा का वैसा ही होता

तब मैंने और ऊपर जाना चाहा
लेकिन आसमान में आठवीं सीढ़ी थी ही नहीं।

मैंने खोया धैर्य

अब मेरा हर चीज को खोलकर देखने का मन
करता है
वह चाहे कुकर हो
या किसी का सिर
मुझमें धैर्य नहीं रहा

मेरे पूर्वज हर रहस्य का सम्मान करते थे
वे उसे गाते थे, बजाते थे
लेकिन खोलते नहीं थे।

मेरे लिए वे खुद रहस्य थे
मैं उन्हें भी खोलकर देखना चाहता हूँ

हर कब्र, हर समाधि का रहस्य मुझे पुकारता है
मैं हर मूर्ति का सीना फोड़कर देखना चाहता हूँ
कि अगर वहाँ कोई रास्ता है तो वह कहाँ जाता है।

तुष्ट-सम्पुष्ट छपास का शौकिया शोकगीत

कविता लिखने के सौ कारण थे
और छपने का एक भी नहीं
फिर भी मैं छपा
—एक भाषा के डूबते टापू के सारे बाशिन्दे समुद्र के सारे सीप, सारे मोती
क्योंकि अपनी अलमारी के ताखे में रख लेना चाहते थे
और क्योंकि मैं भी उनमें से एक था

चारों तरफ अफरा-तफरी मची थी
शब्दों का अपने अर्थों से रिश्ता
देवर-भाभीनुमा मजाक का हो रहा था
अन्तिम तौर पर सबकुछ अगम्भीर था
कुछ भी ऐसा न था
जिसके मकसद अपनी अश्लीलता में जगजाहिर न हों

पुरस्कार-समितियों के सदस्य
और व्यक्तित्ववान आलोचक

कवियों के सपनों में कविताएँ डिक्टेट कर रहे थे
और जागा हुआ कवि
बर्फ-सी जमी अपनी नींद की चट्टान से कुछ भी तोड़ नहीं पा रहा था
—कठिन आसन में लेटा वह
आत्मा को निचोड़ता और खून थूकता था
तो ऐसे में छप जाने के अलावा कोई चारा न था
हालाँकि छपना आसमान के फटे वितान को सिलना नहीं था
जिसका जिक्र कविता में किया गया था
वह छाती में रखे पत्थर का सरकना भी नहीं था
जिस पर नाखून खरोंचने से कविताएँ उतरती थीं
वह उस मर्दाना अट्टहास की नफी भी नहीं था
जिसके तले कमजोरदिल, गरीब और जनाने पानी हुए जाते थे

फिर भी छपना जरूरी था
क्योंकि छपने के बाद चिन्ता कम हो जाती थी
क्योंकि छपने के बाद कविता कंक्रीट का खम्भा हो जाती थी
जिसे जमीन में गाड़कर एक छत उस पर टाँग सकते थे
क्योंकि छपना दरअसल समाज में शामिल हो जाना था
और समाज कुछ यूँ था कि वह शक्ति के, सत्ता के और प्रभुता के अनेक चेहरों का
संग्रहालय तो था ही। इसके अलावा उसने भय का रसायन तैयार किया था
जिसमें आत्मा के बाकी हर चेहरे को पिघलाकर घोल दिया गया था
वहाँ आधे डरनेवाले थे और आधे डरानेवाले
—इस तरह वहाँ रहने के लिए आसान बस्ती और आने-जाने के लिए एक सीधा
रास्ता बनता था
छपना भी डरनेवालों से डरानेवालों में चले जाना था

डर-डरकर अनन्त तक जीना मुश्किल था
(और जीना तो अनन्त तक ही था)
इसलिए हड़बड़ाकर मैं छपा

और छपते ही मैंने डरनेवालों की एक पूरी फसल देखी
जो छपने के लिए बस पकी खड़ी थी

एक जाती हुई भाषा की शायद आखिरी खेप
जो प्रतिबद्धता की संकीर्णता से उकताकर
उदार-उदार हुए जाते बुजुर्गों की
असफल केंचुल पहन हथियाए हुए विचारों से नई सदी को जीतने चल पड़ी थी

उनके पास कुछ भी न था
सिवा उन कमन्दों के
जो मीडिया-महान जीवित-अजीवित पुरखों ने
राजमहल की खिड़कियों में डाली थीं
वे सबके सब दिल्ली चले आ रहे थे
और भव्य बरामदों में खड़े
एक के साथ हाथ से, एक के साथ आँख से और एक के साथ कान से बतिया रहे थे
    यह बहुमुखी प्रतिभाओं का बहुधन्धी-बहुमंजिला
    संवाद था जो उस चुप्पी के गिर्द ईंट-दर-ईंट
    दहाई-ब-दहाई बन रहा था जो ईश्वर ने और राजाओं ने साधी थी
और भीतर बड़ी-बड़ी अकादमियाँ
कलम के नख-दन्त-विहीनों को
दुर्घटना के खामोश, निष्क्रिय तमाशबीनों को
उनके संयम के जवाब में प्रशस्तियाँ बाँट रही थी

नई फ़सल के शब्द-सिपाही
मंचीय कर्मकांड के अविश्वासी थे
लेकिन मुकुट के अभिलाषी थे
अपने तईं वे भी निर्वाण के हकदार थे
हालाँकि पलट पड़ने को भी तैयार थे
कोई भी राह पकड़कर
किसी भी दिशा में
वे कहीं भी जा सकते थे
उन्होंने कोई कसम नहीं खाई थी
बेढब लोच उन्होंने पाई थी

ऐसे उन लोचवान हमउम्रों के बीच
और ऐसे उन पुरखों के बीच
जो छप-छपकर पत्थर हो चुके थे/हर लोच खो चुके थे
अकारण
या मंगलवार का अखंड व्रत रखने के कारण
मैं छपा
और मैंने जाना
मेरी आधी-हुई-आधी-अनहुई उन परेशान अभिव्यक्तियों ने माना
कि मेरे शब्दों का मन्तव्य अन्ततः कुछ भी न था
कि वे एक बेसब्र समाज की एक बेसब्र भाषा के
बेहद लचीले, बेहद अस्थिर और लगातार अर्थ-संदिग्ध शब्द थे
    खाली, ध्वनिच्युत मन्त्र
    जिनके अनुष्ठान मारे जा चुके थे
    पेशाबघर में चिपके वे
    बस मर्दानगी को पुकारते थे
    (कि हाथ से निकले जाते वक्त को
    बस वही थाम सकती थी)
और उनका मकसद सिर्फ छपना था
और छपकर जल्द-अज-जल्द पत्थर हो जाना था
जो हवा को भी रोकता है और पानी को भी
और जिससे इमारतें बनती थीं—पहले भी और आज भी।

□□□